चतुर्थ अध्याय

माला वर्मा एवं प्रीति सेनगुप्ता के यात्रावृत्तांतों में विविध आयाम तुलनात्मक अध्ययन

4.1 ऐतिहासिक आयाम

4.2 सामाजिक आयाम

4.3 सांस्कृतिक आयाम

4.4 धार्मिक आयाम

4.5 प्राकृतिक आयाम

4. माला वर्मा एवं प्रीति सेनगुप्ता के यात्रावृत्तांतो में विविध आयाम तुलनात्मक अध्ययन

किसी भी साहित्य में समाज के कई आयाम समाहित होते है। उसमें तत्कालीन समाज की मनुष्य की चिंता हो सकती है। उनकी किसी प्रकार की पीड़ा हो सकती, उसमें कोई ऐतिहासिक पक्ष हो सकता है या सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, किसान, नौजवान, सभ्यता-संस्कृति, प्रकृति इत्यादि का कोई आयाम हो सकता है। कोई दर्शन हो सकता है, विचार हो सकता है। न जाने कितने आयाम साहित्य में होते है। इन आयामों से जुड़कर ही साहित्य का सृजन होता रहा है और इन्ही सब में उसकी सार्थकता की तलाश होती रही है। उसका अध्ययन व विश्लेषण होता रहा है। माला वर्मा हिन्दी साहित्य की और प्रीति सेनगुप्ता गुजराती साहित्य की वर्तमान समय में दो अलग-अलग भाषाओं की महत्त्वपूर्ण लेखिका है। आलोच्य लेखिकाओं को यात्रा का अपार अनुभव है। दोनों ने अनेक साहसी यात्राएं की है। एवं खूब जमकर बड़े मनोयोग के साथ लेखन कार्य भी किया है। किसी स्थान को देखने, समझने एवं उसे व्यक्त करने की माला वर्मा और प्रीति सेनगुप्ता की भिन्न-भिन्न दृष्टि है। आलोच्य लेखिकाओं के लेखन में मौजूद सम-विषम पक्षों के कुछ प्रमुख बिंदुओं को ध्यान में रखकर यहाँ उनका अध्ययन व विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है, जो इस प्रकार से है-

4.1 ऐतिहासिक आयाम : दुनियाँ के हर हिस्से का अपना एक इतिहास है। जिसमें उसका शासन-सत्ता से लेकर उत्थान-पतन, निर्माण से लेकर कला, ऐश्वर्य से लेकर वैभव, सब कुछ समाया होता है। इसके अंतर्गत कुछ कहानियों में बचे होते है तो कुछ खंडहरों में, बाकी कुछ जीवंत दशा में अपनी उपस्थिति दर्ज करते है। अपनी यात्राओ के दौरान लेखिका माला वर्मा एवं प्रीति सेनगुप्ता ने कई ऐतिहासिक स्थलों की यात्राएं की जो इतिहास के पन्नों में कैद है। ऐसे स्थलों को उन्होंने देखा, समझा एवं अत्यंत सहज अंदाज में अपने यात्रावृत्तांतों में बयां किया है। यूरोप यात्रा के दौरान माला वर्मा पेरिस के 'एफील टॉवर' को देखकर अत्यंत उत्साहित हो उठती है। एफील टॉवर के निर्माण कार्य तथा उसकी विशेषता का वर्णन माला जी इस तरह करती है "एफिल टॉवर में नीचे से ऊपर प्रकाश की सुन्दर व्यवस्था की गई थी। लोहे का यह अद्भुत ढाँचा रोशनी में जगमगा रहा था। पेरिस का प्रतीक है यह एफिल टॉवर, लोहे में कला और इंजीनियरिंग का कमाल माना जाने वाला यह 15,000 टन वजन का टॉवर 985 फीट ऊँचा है। प्रिंस ऑफ वेल्स द्वारा 1889 में इसका अनावरण किया गया था। 'एफिल टॉवर' नाम, इसके डिजाइनर फ्रांसीसी इंजीनियर 'अलेक्जेन्डर गुस्ताव एफिल' के नाम पर रखा गया है। इसमें तीन मंजिलें हैं।"[1] यह ऐतिहासिक ऐफ़िल टावर न सिर्फ पेरिस का बल्कि सम्पूर्ण विश्व की एक शानदार रचना है। जिसका अपना ऐतिहासिक

महत्व है। दुनिया भर से कोई भी व्यक्ति जो फ़्रांस के पेरिस शहर जाता है, वह ऐतिहासिक ऐफ़िल टावर को जरूर देखने जाता है, इसका कारण है इसकी भव्यता, इसका ढेर सारे लोहे से बना स्ट्रक्चर जो पर्यटकों को यात्रीओं को अपनी ओर आकर्षित करता है। यह दुनिया का सबसे रूमानी स्ट्रक्चर माना जाता है।

माला वर्मा लंदन और स्ट्राटफोर्ड शहर की यात्रा के दौरान ऐतिहासिक 'ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय' को देखती है। यह संस्था उच्च शिक्षा के महत्त्व हेतु विश्वप्रसिद्ध है। देश-विदेश से अनगिनत छात्र-छात्राएँ उच्च शिक्षा प्राप्त लरने हेतु यहाँ आते हैं। लेखिका ऐतिहासिक 'ऑक्सफोर्ड' एवं 'कैंब्रिज' विश्वविद्यालय का वर्णन इस तरह करती है– "ऑक्सफोर्ड की भाँति ही ब्रिटेन का दूसरा विश्वविद्यालय कैंब्रिज नगर में है। कैंब्रिज एक छोटा नगर है, लेकिन इसी छोटे स्थान में यहाँ अनेक कॉलेज स्थित हैं। सन् 1280 में यहाँ जो भवन बना था, वह आज सबसे प्राचीन माना जाता है। यहाँ पढ़ाई एवं नैतिक आचरण पर बहुत बल दिया जाता है। इन्हीं विश्वविद्यालयों में अपने हिन्दी के महान् कवि डॉ. हरिवंश राय बच्चन ने भी अध्ययन किया है। भारतीय छात्र-छात्राएँ भी यहाँ अवसर प्राप्त करते हैं।"[2] इन विश्वविद्यालयों का अपना इतिहास है। ये जितने बड़े शिक्षा के केंद्र है उतने ही बड़े निर्माण व शिष्टाचार के भी संस्थान है। इन संस्थानों से न जाने कितने ज्ञान-विज्ञान की धाराएं प्रस्फुटित हुई है। निश्चित रूप से इनका अपना ऐतिहासिक महत्व व गौरवपूर्ण इतिहास है।

पिरामिडों का अपना ऐतिहासिक महत्व है। ये न सिर्फ इतिहास के बल्कि ये वहाँ के सभ्यता व संस्कृति के, स्थापत्य व निर्माण के भी आश्चर्यपूर्ण नमूने है। माला वर्मा जी मिस्त्र के पिरामिडों देखकर कहती है कि- "मिस्त्र के पिरामिड निःसंदेह विश्व की सबसे मशहूर इमारतों में से एक हैं। मिस्त्रवासियों ने लगभग एक हजार वर्ष के दरमियान एकहत्तर (71) पिरामिडों का निर्माण किया जिसमें गिज़ा में स्थित तीन पिरामिड सबसे बड़े हैं। गिज़ा के इन पिरामिडों का निर्माण चार हजार छह सौ वर्ष पूर्व हुआ था और ये पिरामिड तभी से संसार के सात प्राचीन आश्चर्यों में एक माने गए थे। संयोगवश इन सातों में सिर्फ यही एक आश्चर्य अब तक खड़े हैं।"[3] इस संरचना के इतने लंबे समय तक टिके रहने के पीछे एक बड़ा कारण इसकी इंजीनियरिंग कुशलता है। बिना आधुनिक तकनीक के, केवल मानव श्रम, गणितीय ज्ञान और पर्यवेक्षण से ऐसी गगनचुंबी संरचना का निर्माण आज भी एक रहस्य बना हुआ है। ये पिरामिड न केवल राजाओं के समाधि स्थल थे, वरन वे मिस्त्र की धार्मिक अवधारणाओं जैसे, पुनर्जन्म, आत्मा की अमरता, और देवताओं से संबंध को भी दर्शाते हैं।

इस तरह, मिस्त्र के पिरामिड पौराणिक, रहस्यमयी स्थापत्य संरचना के साथ वे उस सभ्यता की बौद्धिक, धार्मिक और सामाजिक समृद्धि के प्रतीक भी हैं। वे मानव इतिहास में ऐसे प्रमाण हैं जो यह दर्शाते हैं कि प्राचीन युग में भी मनुष्य कितनी जटिल और उन्नत संरचनाएँ बना सकता था। इनकी उपस्थिति आज भी शोध, पर्यटन और सांस्कृतिक गर्व का एक प्रमुख केंद्र बनी हुई है।

जापान एक ऐसा देश है जिसके दो शहरों को एटम बम से पूरी तरह तबाह कर दिया गया। लेकिन जापान इसके बाद युद्ध के बजाय शांति को चुनता है। अपने देश की संरचना के निर्माण का कार्य करता है। उसे प्रगति के मार्ग पर लेकर चलता है। माला वर्मा ने नौ दिन के जापान प्रवास में जितना जापान को देखा-समझा और वहाँ के समाज को महसूस किया उससे वे अत्यंत प्रभावित हुयी। और वे कहती है कि "जापान एक शांतिप्रिय देश है। हमारा देश भी शांतिप्रिय है मगर हमारी सीमाओं पर लड़ाई-झगड़े रोज की बातें हो गई है। किन्तु जापान में ऐसा कभी नहीं सुना। हमारे देश के भीतर पूर्ण शांति शायद ही सुनने को मिले, जापान पूर्णतः शांत है।"[4] जापान ने परमाणु हमने की मार को सहा है, परमाणु हमले ने जापान की पूरी सभ्यता को असर किया है जिसके परिणाम स्वरूप जापान ने युद्ध की नीति को छोड़ कर प्रगति के मार्ग को चुना है। ऐसा वहीं देश कर सकता है जिसने युद्ध के दुष्परिणाम को महसूस किया हो। यही कारण है की जापान में सीमाओं पर शांति बनी हुई है और भारत में इसके विपरीत पड़ोसी देश हमेशा युद्ध करना चाहता है। माला वर्मा इस प्रसंग के द्वारा दो देशों की स्तिथि तथा उनकी मानसिकता का चित्रण करती है।

इसके बाद माला वर्मा, ब्राजील का संक्षिप्त इतिहास पाठकों के सामने इस तरह से रखती है– "पुर्तगाली साम्राज्य के साथ अपने मजबूत औपनिवेशिक सम्बन्धों के कारण, ब्राजील की मूल संस्कृति पुर्तगाली संस्कृति से काफी प्रभावित है। पुर्तगालियों ने यहाँ पुर्तगाली भाषा, रोमन कैथोलिक धर्म आदि अन्य वास्तु शिल्प शैलियों की शुरूआत की जिसका यहाँ काफी प्रभाव दिखता है। ब्राजील की संस्कृति में इतालवी, जर्मन और अन्य यूरोपियों के साथ-साथ जापानी, यहूदी और अरब आप्रवासियों द्वारा लाई गई संस्कृति भी देखने को मिलती है जो 19वीं और 20वीं सदी के दौरान ब्राजील के दक्षिण और दक्षिण पूर्व में बड़ी संख्या में पहुंचे थे।"[5] अपनी यात्राओ के दौरान सबसे पहले माला वर्मा गंतव्य स्थलों की पुख्ता जानकारी इकट्ठा करती है। फिर भ्रमण करती है। तत्पश्चात पढ़ी हुई जानकारी एवं यात्रा के दौरान प्राप्त स्थलों के अनुभवों को एक साथ लेकर अपनी अनुभूति को शब्दों का रूप देती है। इनके लेखन में स्थलों को लेकर स्पष्ट मत है। माला जी अच्छी व्यवस्थाओं की खूब तारीफ करती है। उनके विस्तार की संभावनाओ की बात भी करती है। लेकिन अव्यवस्थाओं को लेकर एक पीड़ा भी उनके भीतर नजर आती है। खास तौर

पर भारत के संदर्भ में यह मत और बेवाक है। माला वर्मा जी प्रकृति पर तुरंत मोहित हो जाने वाली लेखिका है। पेरू में भ्रमण करते हुए लेक टिटिकाका के विषय में कहती है कि "लेक टिटिकाका' (Lake Titicaca) दुनिया की सबसे ऊंची झील है। यह एंडीज पहाड़ के ऊपर स्थित है। इसकी लम्बाई 193 किलोमीटर तथा चौड़ाई लगभग 100 किलोमीटर है। इस तरह यह एक लेक न होकर इनलैंड समुद्र की तरह लगता है। यह पेरू बोलिविया के बॉर्डर पर स्थित है और इसका पश्चिमी किनारा पेरू के पास है और पूर्वी हिस्सा बोलिविया के करीब।"[6] माला वर्मा जिस तरीके से लेक का वर्णन करती है, उससे प्रतीत होता है की, वह एक खगोलशास्त्री की तरह सर्वेक्षण करती है जो इतने बारीकी से सारी जानकारी पाठकों को उपलब्ध करा रहा है।

मानव सभ्यता ने दुनियाँ के विभिन्न हिस्सों में तरह-तरह की समस्याओं का सामना किया है और आज भी कर रही है। मनुष्य इस सृष्टि का सबसे अधिक विकसित व बुद्धिमान प्राणी है। सामाजिक प्राणी है, लेकिन मनुष्य-मनुष्य को लेकर ही तरह-तरह की कुंठाओ से, श्रेष्टताबोध से भरा हुआ है। एक मनुष्य ने अपने आप को दूसरे से अलग कर लिया है, जिसका आधार कहीं भाषा है, कहीं जाति है, कहीं धर्म है, कहीं रंग है। इस तरह के भेद के अनेक कारण है। भेद होने से परेशानी नहीं है, लेकिन इस भेद के फलस्वरूप जो यातना, जो पीड़ा, संघर्ष शुरू होता है, वह मनुष्य जाति के लिए कलंक एवं चिंता का विषय है। यह दुनिया के हर हिस्से में व्याप्त है। दक्षिण अफ्रीका यात्रा के दौरान लेखिका रंगभेद की नीति की शुरुवात और अंत का वर्णन यहां प्रस्तुत करती है- "यहीं से रंगभेद नीति की शुरुआत हो गई जिसे लगभग सौ वर्षों तक काले लोगों ने लड़कर अंग्रेजों से हासिल किया। इस अभियान में बहुत सारे लोगों का नाम आता है जिसमें नेल्सन मंडेला प्रमुख हैं। काफी कुछ सहा और अंतत जीत हासिल की।"[7] 'रंगभेद नीति' यह एक ऐसी अमानवीय एवं अन्यायपूर्ण व्यवस्था थी जिसमें गोरों 'मुख्यतः डच और अंग्रेज उपनिवेशकों' ने अफ्रीकी मूल के श्याम-काले लोगों के साथ जातीय भेदभाव, सामाजिक बहिष्कार और शोषण की नीति अपनाई थी। लेखिका इस प्रसंग के माध्यम से ऐतिहासिक तथ्यों को सामने लाती हैं, और उस संघर्ष, पीड़ा और अंततः प्राप्त स्वतंत्रता को भी उजागर करना चाहती हैं, जो दक्षिण अफ्रीका के निवासियों, विशेषतः अश्वेतों ने झेली।

प्रस्तुत घटना से स्पष्ट होता है कि, रंगभेद केवल एक राजनीतिक नीति नहीं थी, परंतु यह मानव गरिमा और अधिकारों के विरुद्ध एक सुनियोजित अत्याचार था। इसे लगभग सौ वर्षों तक दक्षिण अफ्रीका के

काले नागरिकों ने झेला। उन्हें अपने ही देश में दोयम दर्जे का नागरिक बना दिया गया था। वे शिक्षा, चिकित्सा, आवास, मतदान, यात्रा और रोजगार जैसे मूलभूत अधिकारों से वंचित थे।

माला वर्मा यहां 'नेल्सन मंडेला' का उल्लेख विशेष रूप से यह दर्शाने के लिए करती है की, कैसे एक व्यक्ति प्रतीक बनकर पूरे आंदोलन का नेतृत्व करता है। मंडेला ने सताईस (27) वर्षों तक कारावास झेला, अपमान और पीड़ा सही, लेकिन उनका संकल्प टूटा नहीं। लेखिका के लिए मंडेला केवल एक राजनीतिक नेता नहीं, वरन संघर्ष, सहिष्णुता और मानवीय अधिकारों की जीत के प्रतीक हैं। यह जीत यातना से मुक्ति की जीत है। यह जीत मनुष्यता की जीत है।

इस संदर्भ में लेखिका का उद्देश्य केवल ऐतिहासिक जानकारी देना नहीं है, परंतु वह यह संदेश भी देना चाहती हैं कि, अत्याचार कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, यदि उसके विरुद्ध संगठित और शांतिपूर्ण संघर्ष किया जाए, तो जीत संभव है। दक्षिण अफ्रीका का यह प्रसंग हमें यह भी सिखाता है कि स्वतंत्रता और समानता बिना बलिदान के नहीं मिलती। इस तरह माला जी, रंगभेद नीति और मंडेला के संघर्ष के माध्यम से न्याय, समानता और मानव अधिकारों की सार्वभौमिक महत्ता को रेखांकित करती हैं।

'नॉर्थ पॉल' की यात्रा स्वयं में एक इतिहास है। पृथ्वी का यह छोर अपने आप में ऐतिहासिक स्थान है। यहाँ जाना जोखिम-भरी यात्रा है। यहाँ प्रकृति तरल व सघन रूप से विराजती है। प्राकृतिक संसाधन की दृष्टि से यहाँ कोयला प्रचुर मात्रा में है। सफेद भालु यहाँ के सबसे बड़े बादशाह है। उनके आक्रमण के डर से यहाँ के स्थानीय लोग अपनी रक्षा के लिए हथियार रखते है। इस बर्फ के समुद्र का वर्णन करते हुए माला जी लिखती है कि- "आर्कटिक बर्फ का एक समुद्र है जो जमीन से घिरा हुआ है तथा उत्तरी गोलार्ध के सबसे ऊंचे अक्षांसों पर स्थित है। यह आर्कटिक महासागर की सीमा से लगे छः देशों में फैला हुआ है- कनाडा, डेनमार्क (ग्रीनलैंड), रूस, नॉर्वे, यू.एस.ए (अलास्का) और आइसलैंड।"[8] आर्कटिक, एक बर्फ से ढका समुद्र है, जो पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध के उच्च अक्षांशों पर स्थित है। यह एक संवेदनशील पारिस्थितिक तंत्र है जो पर्यावरण, भू-राजनीति और वैश्विक जलवायु परिवर्तन के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। लेखिका इस प्रसंग के माध्यम से आर्कटिक के बहुआयामी स्वरूप को रेखांकित करती हैं।

सबसे पहले वह आर्कटिक की अनूठी भौगोलिक स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित करती है, यह एक समुद्र है, किन्तु भूमि से घिरा हुआ है। यह विशिष्टता इसे अंटार्कटिका से अलग बनाती है, जो एक महाद्वीप है और समुद्र से घिरा हुआ है। माला जी का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि, आर्कटिक केवल बर्फ

का फैलाव नहीं है, परंतु यह एक समुद्री पारिस्थितिक क्षेत्र है जिसकी अपनी विशेषताएँ और चुनौतियाँ हैं। आर्कटिक महासागर छह देशों की सीमाओं से जुड़ा हुआ है, यह दर्शाता है कि, आर्कटिक न केवल प्राकृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह एक अंतरराष्ट्रीय रणनीतिक क्षेत्र भी है, जहां देशों के हित जुड़े हुए हैं। इसके परिणाम स्वरूप आर्कटिक की भौगोलिक स्थिति और संसाधनों की उपस्थिति इसे वैश्विक शक्ति-संतुलन का केंद्र बना रही है और यह क्षेत्र अंतरराष्ट्रीय संबंधों, पर्यावरणीय चिंताओं और वैश्विक राजनीति का भी एक अहम हिस्सा बन चुका है।

प्रीति सेनगुप्ता के यात्रा लेखन की विशेषता है कि, वह जिन स्थानों पर जाती है वहां के ऐतिहासिक परिवेश तथा इतिहास का बारीकी से अध्ययन करती है। तत्पश्चात प्राप्त अनुभव को शब्दों के मध्यम से अपनी रचना में चित्रित करती है। इजिप्त पिरामिड का वर्णन यहां लेखिका प्रस्तुत करती है, "इजिप्तमा राजाओना पोतपोताना विशिष्ट देवो पण रहेता, जेमने सतत प्रसन्न राखवा माटे पूजा-पाठ, नेवैध्य अने उत्सवो योजायां करता। कैटलाक देवो मनुष्यरूपमां दर्शावता, कैटलाकना माथा प्राणीओना- गाय, बिलाड़ी, सिंह, वानर वगेरे- बतावाता, तो केटलाक देव-देविओं मानव अने प्राणी स्वरूपे आलेखाता।"[9] प्रीति जी यहां बताना चाहती हैं कि, इजिप्त में राजा को विशेष देवता के रूप में पुजा जाता था। राजाओं को ईश्वरतुल्य मानने की यह परंपरा से ज्ञात होता है कि, शासन और धर्म एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे। राजा को प्रसन्न और संतुष्ट रखना एक धार्मिक कर्तव्य माना जाता था, जिसके लिए पूजा-पाठ, नेवैध्य (भोग अर्पण), और उत्सवों का आयोजन किया जाता था। यह परंपरा दर्शाती है, धार्मिक कर्मकांड देवताओं के साथ-साथ शासक के लिए भी किए जाते थे। प्रसंग के अगले भाग में लेखिका प्राचीन मिस्र की देव-कल्पना की विशिष्टता को रेखांकित करती हैं। इजिप्त के देवताओं को मिश्रित रूपों में दर्शाया गया है, इसमे कुछ देवों के शरीर मानव के और सिर जानवरों के होते थे। गाय, बिल्ली, सिंह, बंदर जैसे प्राणियों को पवित्रता और प्रतीकात्मक शक्तियों का प्रतिनिधि माना गया था। इस प्रकार, लेखिका स्पष्ट करती है कि, इजिप्त की धार्मिक संस्कृति प्रकृति, पशु-जगत और मानवता के अद्भुत समन्वय पर आधारित थी। देव-देवियों को मानव और प्राणी दोनों रूपों में चित्रित करने का उद्देश्य यह भी था कि वे प्राकृतिक शक्तियों, गुणों और भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते थे। प्रीति सेनगुप्ता इस प्रसंग के माध्यम से प्राचीन मिस्र की धार्मिक गहराई, शासक और धर्म का परस्पर संबंध, तथा देवताओं के प्रतीकात्मक स्वरूपों की सांस्कृतिक विशेषताओं को उजागर करती हैं।

लेखिका इजिप्ट यात्रा के दौरान ऐतिहासिक पिरामिड दर्शन के लिए जाती है, वहां की घटना लेखिका को झगझोर कर रख देती है। मौजूदा समाज में हमे जरूरत है की, हम अपनी ऐतिहासिक धरोहरों को बचा कर रखे, उनका संरक्षण करे, न की उन्हे उजाड़े, न उनको नुकसान पहुचाएं। प्रीति सेनगुप्ता लिखती है- "अेनी हालत जोइने दुख अने आघात पण लाग्या। अेनु चिरआदरणीय अस्तित्व जनसाधरणना हाथमां आवी गयु छे। अंधारू ढडता त्या लोको फरवा, टहेलवा आवे छे, ऐना काढ-जीण प्राकारनी अड़ोअड़ मोटरों उभी राखे छे। जे पाषाणों पर मृदु हर्ष स्पर्श ज योग्य छे तेना ऊपर चड़ी बेसे छे। इतिहाससिक्त आ समाधि स्थानोनी समीप आ चापल्य शोभतुं नथी।"[10] लेखिका प्राचीन इजिप्त की ऐतिहासिक धरोहरों की वर्तमान स्थिति पर गहरी चिंता व्यक्त करती है। प्रीति जी का मानना है की, जिन ऐतिहासिक स्थलों का कभी अत्यंत सम्मान और श्रद्धा से संरक्षण किया जाता था, वे आज जनसाधारण के लिए एक आम पर्यटन स्थल बन गए हैं, जहाँ अनुशासन, संवेदना और गरिमा का अभाव दिखाई देता है। जिन स्थानों को देखकर कभी श्रद्धा और गौरव की भावना उत्पन्न होती थी, अब उनकी दुर्दशा देख मन में दुःख और आघात का अनुभव होता है। प्राचीनकाल में जो 'चिरआदरणीय अस्तित्व' माने जाते थे - जैसे समाधि स्थल, मंदिर, स्मारक या पिरामिड वे अब भीड़-भाड़ और शोरगुल के साधारण केंद्र बन गए हैं। प्रीति जी, पिरामिड के स्थान के बारे में आगे बताती है, वहाँ अंधेरा होते ही लोग सैर-सपाटे के लिए आने लगते हैं, उनकी गाड़ियों की कतारें लगती हैं और लोग इस पिरामिड के पवित्र पत्थरों पर बैठने लगते हैं जिन्हें केवल कोमल स्पर्श से ही छूना उपयुक्त था। यह व्यवहार लेखिका को अनुचित और अपवित्र प्रतीत होता है, विशेषतः तब जब यह ऐतिहासिक समाधि स्थलों के निकट हो रहा हो। इतिहास केवल ज्ञान का विषय नहीं है। यह श्रद्धा और चेतना का विषय भी है। जब हम ऐतिहासिक धरोहरों को केवल मनोरंजन या पर्यटन का साधन बना देते हैं, तब हम उनके महत्व और गरिमा को कम कर देते हैं। लेखिका इन स्थलों के प्रति संवेदनशीलता, सम्मान और संयमपूर्ण व्यवहार की आवश्यकता पर बल देती है। ऐतिहासिक स्मारकों की गरिमा और उनकी पवित्रता को बनाए रखना हम सभी का दायित्व है। वे केवल पत्थरों के ढाँचे नहीं हैं, वे इतिहास, परंपरा और आत्मा के जीवंत प्रतीक है, जिनके प्रति सम्मान आवश्यक है।

'रामवृक्ष बेनीपुरी' इस संदर्भ में यूरोप के लोगों का ऐतिहासिक वस्तुओं के संरक्षण पर लगाव का चित्रण यहाँ इस तरह प्रस्तुत करते है- "इंग्लैंड के साहित्यिकों की स्मृति-रक्षा में छोटी-छोटी बातों पर ऐसा ध्यान रखा गया है कि देखकर आश्चर्य होता है। शेक्सपीयर ने अपने हाथ से मलबेरी का जो पेड़ रोपा, उसके पोते को आजतक चार सौ वर्षों के बाद भी जिलाकर रखा गया है और कीट्स ने जिस पेड़ पर बैठी बुलबुल की

आवाज सुनकर 'ओह टू नाइटेंगिल' लिखा,वह पेड़ गिर रहा है; तो भी भरमाए से उसे गिरने और नष्ट होने से बचाया जा रहा है।"[11] आगे बेनीपुरी जी 'सेक्सपीयर' के गाँव के बारे में कहते है- "इस गाँव को ऐसा बना दिया गया है कि लगता है, उसके जर्रे-जर्रे में शेक्सपीयर रम रहा हो ! जहाँ उसने जन्म लिया, जहाँ पढ़ा, जहाँ अपने से पाँच वर्ष बड़ी लड़की से प्रेम किया, जहाँ वह धन और यश पाकर शान से रहा और जहाँ उसे दफन किया गया, एक-एक स्थान को इस तरह सुरक्षित रखा गया है कि देखते आँखें नहीं अघातीं।"[12] प्रीति जी मिस्त्र के लोगों को स्थापत्य का संरक्षण कर पाने में सक्षम नहीं मानती है, वही रामवृक्ष बेनीपुरी जी यूरोप के लोगों को इसके विपरीत अपनी पौराणिक विरासत को संभालकर रखने वाला मानते है। इस कड़ी में इतिहासकार 'आर्नाल्ड टायनबी' ने अशोक के बारे में कहा है- "अशोक इसलिए याद किया जाएगा कि उसने अपनी राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करते समय अपनी अंतरात्मा की पुकार को कार्यरूप में परिणित किया"[13]

प्रीति सेनगुप्ता प्राचीन इजिप्त की राजशाही संस्कृति और समाधि-निर्माण की परंपरा पर प्रकाश डालती है - "घना राजाओ पोतानी समाधिओं पोताना राज्य-अमल दरमियान करावी देता, तेथी अे पण मनपसंद ज होय। आना गर्भग्रहनी बधी दीवालों, थांभलाओ अने छत सम्पूर्ण चित्रित छे। देव-देवीओ अने राजाना जीवननां प्रशस्य द्रस्यों जोवा मड़े छे। अेनी हयातीमां आ अेक ज कक्ष पुरो थई शकेलों"[14] इजिप्त के अधिकांश राजाओं ने अपने शासनकाल में ही अपने मकबरे बनवा लिए थे, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि उनकी अंतिम विश्रामस्थली उनकी इच्छाओं, मान्यताओं और भव्यता के अनुसार हो। यह उनकी मृत्यु के प्रति गंभीरता और मृत्योत्तर जीवन की अवधारणाओं को भी उजागर करता है। लेखिका यह भी इंगित करती हैं कि, 'राजाना जीवननां प्रशस्य द्रस्यों' समाधियों की दीवारों पर चित्रित किए जाते थे, जिससे यह स्पष्ट होता है कि राजा मृत्यु के बाद भी अमरत्व और देवत्व की आकांक्षा रखते थे। ये चित्र उन्हें मृत्यु के बाद की यात्रा में मार्गदर्शक और प्रेरक रूप में प्रस्तुत करते थे।

प्रीति सेनगुप्ता आगे बताती है, की कैसे इन राजाओं की समाधि बनाते वक्त राजा की जरूरत का ध्यान रखकर उसके मृत शरीर के साथ और भी लोगों को दफनाया जाता था जिसका वर्णन इस प्रकार से है- "जीवती व्यक्तिओने आवश्यक बधी ज सामग्रीओ, नोकर-चाकर सुद्धा आ समाधिओमां राजना शबनी साथे मुकी देवाती, लूंटफाट थती अटकाववा आ बधी ज कबरो जमीननी अंदर खोदीने बनावाती, पछी बारणु पण सज्जड बंध करी देवाता, घणी वार तो तुटेली ईंट वगेरे खड़कीने छुपावी पण देवाता।"[15] इजिप्त की सभ्यता में मृत्यु को जीवन का अंत नहीं माना जाता था, परंतु मृत्यु को एक नए जीवन की शुरुआत के

रूप में देखा जाता था। इसी विश्वास के आधार पर मृत राजा की समाधियों को इस प्रकार सुसज्जित और संरक्षित किया जाता था कि वह परलोक में भी वैभवशाली जीवन व्यतीत कर सके। इसलिए राजा की मृत्यु के बाद उसके साथ-साथ उसकी प्रिय वस्तुएँ, मूल्यवान सामग्री और यहाँ तक कि सेवक भी समाधि में रखे जाते थे। तत्कालीन इजिप्त की संस्कृति में ऐसी मान्यता थी, की मृत्यु के बाद भी राजा को उपयोग हेतु उसकी प्रिय वस्तुओं की आवश्यकता पड़ेगी ऐसे में राजा के जीवित सेवकों को भी उस समाधि में रख दिया जाता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि मिस्री संस्कृति में यह विश्वास था कि आत्मा मृत्यु के बाद भी अस्तित्व में रहती है और उसे वैसी ही सुविधाओं की आवश्यकता होती है जैसी उसे जीवन में थी। इसके साथ लेखिका आगे अपने वर्णन में बताती है कि, इन समाधियों को 'जमीननी अंदर खोदीने बनावाती', यानि समाधियों को जमीन के अंदर खोद कर बनाया जाता है, ऐसा चोरी-लूटपाट से बचने, रक्षा के लिए किया जाता होगा। इस बात से यह स्पष्ट है कि, इन कब्रों को गुप्त और सुरक्षात्मक तरीके से बनाया जाता था ताकि अमूल्य वस्तुओं और पवित्र वस्तुओं को चोरों से बचाया जा सके। 'घणी वार तो तुटेली ईंट वगेरे खड़कीने छुपावी पण देवाता', सुरक्षा को और मज़बूत करने के लिए समाधियों के द्वार को ईंटों से बंद करके छिपा दिया जाता था ताकि कोई इन्हें आसानी से खोज न सके। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि, प्राचीन इजिप्त के लोग अपने मृतकों की समाधियों के संरक्षण को कितना गंभीरता से लेते थे। प्रीति जी इस प्रसंग के द्वारा प्राचीन मिस्र की गहन धार्मिक आस्था, मृत्योत्तर जीवन के प्रति उनके विश्वास, समाधि निर्माण की भव्यता तथा उसकी सुरक्षा को लेकर की गई सावधानियों को रेखांकित करती हैं। वह यह दिखाना चाहती हैं कि मिस्रवासियों की मृत्यु और आत्मा के प्रति दृष्टि अत्यंत व्यावहारिक, व्यवस्थित और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध थी।

प्रीति सेनगुप्ता 'हिरोशिमा' पर हुए परमाणु हमले से जापान के लोगों के जीवन पर किस तरह का असर पड़ा इस ऐतिहासिक क्रूर घटना का वर्णन इस तरह से करती है। "आखु शहर ओगस्टनी छटिअे अनुबॉम्बना अणधार्या विस्फोट थी भस्मीभूत थयु हतुं। 'शांति-उद्यान' मा (Peace Park) चालता हजी अे समयनी ईंटोंना टुकड़ा ठोकरे चड़े छे। अे भयंकर दुर्भाग्यनी साक्षीरूप अेक मकान पोतना ज हाड़पींजरनी दशामां नदीने अेक किनारे उभु छे, बस अेटलुं ज नजर समक्षनुं अेक स्मरणचिन्ह छे।"[16] लेखिका इस स्थान के बारे मे आगे बताती है- "शांति-उद्यानमा त्रनेक स्मारक छे। ते दिवसे बड़ी मरेलां बाड़के माटेनुं अेक मोटों घंट अने शाश्वत अग्निशिखा। ते शापित दिवसे मृत्युसात थयेलां 2,00,000 अभागी लोकोनी समाधि पासे केटलाक लोको बोल्या-चाल्या-हाल्या वगर उग्र सूर्याग्निमां तपता बैठा

हता। निःशब्दे अणुयुद्ध प्रत्ये पोताने विरोध नोनधावता आ आदर्शवादी लोकोना निरर्थक प्रयासने जोइने मन रुँधाई आव्यू। ढोलना धीमा अवाज अने मृदु मंत्रोच्चार सिवाय त्या कशुं ज जीवंत न हतुं। पासे अघतन मकानमां वसावेलुं अेक संग्रहालय पण छे ज्या अे क्रूरताअे सर्जेली विद्रूपतानो इतिहास जोवा मड़े छे। खरेखर तो अे बड़ेलां, झड़ेलां आकार खोई बेठेलां, रोगीस्ट मनुष्य जंतुओनी तस्वीरों जोई शकाय तेम ज नथी। माराथी तो ना ज जोवाई।"[17] इतनी क्रूरता के साथ इतने सारे निर्दोष लोगों की मृत्यु के बावजूद आज ये शहर प्रगति की राह पर आगे बढ़ रहा है। इस संदर्भ मे लेखिका इसे 'अपराजित' नाम देती है। लेखिका के अनुसार, "छता हिरोशिमा अपराजित गणाय छे। थोड़ा ज वर्षोंमां, भंगार खसेड़ीने, राख खंखेरीने फरी शहेर उभुं थयुं। अत्यारे तो धीकतु बंदर अने विकसेलु औद्योगिक केंद्र गणाय छे"[18] परमाणु बम की त्रासदी झेलकर आज जापान निरंतर दुनिया में अपने प्रगति रथ पर अग्रसर है। आधुनिक समय में जापान प्रत्येक क्षेत्र में अपनी भूमिका निभा रहा है।

लेखिका आगे चीन के दीवार का वर्णन इस प्रकार से करती है– "The Great Wall अे खरेखर अेना नामने सार्थक करे छे। 3600 माइल लांबी आ दीवाल मानवीना श्रम, पोतानी शक्तिमांनी श्रद्धा अने अेकाग्रतानी साक्षी छे। अेंना परथी पाँच घोडा दोड़ता अेक साथे जई शके अेटली अे पहोड़ी छे अने लगभग 12 थी 15 फीट जेटली ऊंची छे। पत्थरमांथी बनावेली अडीखम, दुर्गम, दुर्भेद आ दीवाल बनावता अगण्य लोकोनी जान खुवार थई गयी। हुमला थता रहया, दीवाल तूटती रही, बंधाती रही। छेल्ले वीसमी सदीना शरुआतना वर्षोंमां चीननी सरकारे फरीथी अेनुं समारकाम करावड़ाव्यूं साचे ज अे अेक अनुपम, अजोड़ अेवी अजायबी छे। चोतरफ स्थितिप्रज्ञ जेवा पर्वतों छे। अेना दरेक वडांकने अडकती, टोचे-रोचने वडगती आ दीवाल नजर पहोंचे त्या सुधी, ने ते पछी पण अनंतमां मड़ी जती लागे छे"[19] प्रीति सेनगुप्ता दीवार की विशालता और उसकी भव्यता को केवल एक संरचना के रूप में प्रस्तुत नहीं करती, बल्कि मानव संकल्प और श्रम के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करती है। यह दीवार दर्शाती है कि, जब मनुष्य एकजुट होकर कुछ करने की ठान लेता है, तो वह कितना कुछ कर सकता है।

अमेरिकी सैनिकों से बचने और लड़ने के लिए वियतनामी लोगों ने बंकर बनाए थे उसका वर्णन लेखिका ने यहां किया है-"नाना अेक देशना वीरोअे अमेरिका जेवा महा देशना सैन्यने हराव्युं। अे सिद्धी कोई क्यारे पण भुलशे नहीं। आ भूगर्भ-मार्गों अेमनी जीतमां अत्यंत करणभूत हता अेम कही शकाय"[20] यह घटना वीरता, बुद्धिमत्ता और रणनीति की शक्ति का दर्शन कराती है। एक छोटा सा देश वियतनाम जिसने अमेरिका जैसे शक्तिशाली और अत्याधुनिक सैन्य बल का सामना किया, और उसे पराजित भी किया।

यह विजय केवल हथियारों या संख्या बल से नहीं, परंतु स्थानीय भौगोलिक जानकारी, ज़मीन से जुड़ी रणनीतियों और भूमिगत मार्गों (टनेल्स) के प्रभावशाली उपयोग से प्राप्त हुई थी। इन भूमिगत मार्गों का उपयोग सैनिकों की गुप्त आवाजाही, शस्त्रों के भंडारण और आक्रमणों के लिए किया जाता था। यह सिद्ध करता है कि युद्ध में केवल ताकत नहीं, बल्कि रणनीति, धैर्य और नवाचार भी निर्णायक होते हैं। यह ऐतिहासिक घटना विश्व इतिहास में एक प्रेरक उदाहरण बन गई है कि संकल्प और विवेक से कोई भी बड़ी ताकत को चुनौती दी जा सकती है।

दक्षिण अफ्रीका यात्रा के दौरान लेखिका गांधी जी से जुड़े एतिहासिक पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए वहां उनके द्वारा कीए गए कार्यों का वर्णन यहां प्रस्तुत करती है- "युवान वकील मो. क. गांधीनी मर्मभूमि कही शकाय तेवा देशमां हूं आवी चढी हती। आवी तक केटलांने मड़े ? पोताना देशना अेटलेके भारतना इतिहासने सदंतर बदलनारी नीतीनुं आरंभस्थान जोवा माडवुं अेटले कोई मोटी जात्रा कर्यानुं पुण्य फडयुं। हवे आवा अनन्य अनुभवनी वात मारे कई रीते ना करवी ? दक्षिण आफ्रिकानां शरूआतथी ज मो.क. गांधी त्यांना इंडियनोनी स्थिति सुधारवा प्रयत्नशील थया हता। अने इंडियानां, इंग्लैंडनां तथा स्थानिक छापांमां अेमने कराता अन्यायो, इंडियन विरोधी कानून, रहेवानी जग्या, वेपार माटेनां लायसन्स, काम करवा अंगेनी परवानगी वगेरे अनेक बाबतो विषे लखवा मांड्या हता।"[21] लेखिका कहती हैं कि, मैं उस भूमि पर पहुँचीं जिसे "महात्मा गांधी की मर्मभूमि" कहा जा सकता है, जहाँ से उनके राजनीतिक और नैतिक जीवन का आरंभ हुआ। यह अनुभव प्रीति जी के लिए तीर्थ यात्रा जैसा है। क्योंकि दक्षिण अफ्रीका में गांधी ने पहली बार अन्याय के खिलाफ अहिंसक प्रतिकार की नीति, सत्याग्रह की नींव रखी थी, जिसने आगे चलकर भारत के स्वतंत्रता संग्राम को नई दिशा दी। लेखिका प्रश्न उठाती हैं कि, इतनी दुर्लभ और ऐतिहासिक जगह पर जाकर भी भला कोई उस अनुभव को कैसे न बाँटे ? यह स्थान केवल एक देश-विदेश के यात्रा का पड़ाव नहीं, बल्कि भारत के इतिहास की दिशा मोड़ने वाले आंदोलन की जन्मस्थली है। गांधी जी ने यह महसूस किया कि लोगों तक अपनी बात पहुँचाने के लिए सिर्फ पर्चों या भाषणों से काम नहीं चलेगा, परंतु एक नियमित समाचार-पत्र आवश्यक है, जो निरंतर जनजागरण का कार्य कर सके। आगे लेखिका गांधी जी द्वारा स्थापित समाचार पत्र के बारे बताती है, "पण थोड़ा ज वखतमां अेमने ख्याल आवी गयो के व्हाइट प्रेस पासेथी सहकार के सहायनी आशा राखवी निरर्थक हती। छतां, लोको सुधी पहोंचवा चोपानियां ज नहीं, पण अेक नियमित अखबारनी जरूर हती ज। अेमने 'इंडियन ओपिनियन' शरू कर्यु, जे अेमनां मत, सुचन, निर्णयों, तथा शांतिपूर्ण प्रतिरोधनी नीतीनुं वाहक

अेवुं असरकारक शस्त्र बन्युं।"[22] प्रस्तुत प्रसंग में, अखबार की स्थापना को एक रणनीतिक हथियार की तरह प्रस्तुत किया गया है। 'इंडियन ओपिनियन' सिर्फ सूचनाओं का माध्यम भर नहीं था, यह गांधी जी के विचारों, उनके निर्णयों, और सत्याग्रह जैसे शांतिपूर्ण प्रतिरोधों की नीति को आम जनता तक पहुँचाने का एक प्रभावी साधन भी था।

माला वर्मा और प्रीति सेनगुप्ता अपने यात्रा भ्रमण के दौरान गंतव्य स्थलों के ऐतिहासिक पक्ष को देखना, समझना व उसे शब्दों द्वारा नवीन ढंग से चित्रित करती है। इस प्रकार, माला वर्मा और प्रीति सेनगुप्ता अपने यात्रा-विवरणों में ऐतिहासिक तथ्यों को समाहित कर पाठकों को समग्र इतिहास का अनुभव प्रदान करती हैं। यह उनके लेखन का अतिरिक्त योगदान है, जो पाठकों को सिर्फ एक स्थान की सैर नहीं कराता, बल्कि उसके अतीत की यात्रा पर भी ले जाता है। जिससे हमें देश-विदेश के ऐतिहासिक स्थलों की पूरी जानकारी उपलब्ध होती है। यही तत्व उनके साहित्य को गहराई और बौद्धिक संतोष प्रदान करता है, जिससे उनका यात्रा-साहित्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि ज्ञान और संवेदना का समृद्ध स्रोत बन जाता है।

4.2 सामाजिक आयाम : समग्र विश्व सामाजिक रूप से कई हिस्सों में विभाजित है। हर समाज की अपनी कुछ खास बातें है। उसकी बनावट व बुनावट भिन्न है। उसकी अपनी विशेषताएं है। उसके अपने मान-मूल्य है। अपनी रीति व नीति है। अलग खान-पान, वेशभूषा से लेकर रहन-सहन एवं सामाजिक मान्यताओं के आधार से सबकी अपनी खास बातें है। जिसमें कुछ जटिलताएं है तो कुछ खास एहतियात भी है। यात्रा के दौरान अलग-अलग समाज के लोगों से मिलता उन्हे देखना समझना स्वयं में एक नया अनुभव होता है। जिसमें नई-नई परंपराओं के बारें में जानकारी प्राप्त होती है। आलोच्य लेखिकाओं की यह कोशिश रही है कि वे अपनी यात्रा के दौरान जहाँ यात्राएं करती है वहाँ के समाज के बारे में अधिक से अधिक जाने समझे और उसे साहित्यिक रूप से प्रस्तुत कर सके।

जापानी समाज में नागरिकों की सुविधा, स्वास्थ्य और मानसिक शांति को अत्यंत प्राथमिकता दी जाती है। वहाँ केवल सड़कें बनाना ही विकास नहीं माना जाता, परंतु यह भी देखा जाता है कि, उस विकास का आम नागरिकों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। माला वर्मा जापान यात्रा के दौरान वहां के समाज, सुरक्षा की समझ, सहयोग का ज्ञान एवं शांति की अनुभूति देखकर स्तब्ध रह जाती है और वे कहती है कि- "हाइवे पर कई जगह जहाँ आसपास रिहायशी घर-मकान दिखे वहाँ सड़क के दोनों ओर ऊंची-ऊंची लोहे-टिन की दीवार

खड़ी कर दी गई थी ताकि सड़कों का प्रदूषण, आवाज और धूल-गर्द आसपास रहने वाले लोगों तक नहीं पहुंचे।"[23] प्रस्तुत प्रसंग जापानी शासन-प्रशासन की जागरूकता, नियोजन में सूक्ष्मता और सामाजिक उत्तरदायित्व को भी रेखांकित करता है। लेखिका अप्रत्यक्ष रूप से यह संदेश भी देना चाहती हैं कि जब तक विकास मानवीय मूल्यों के साथ जुड़ा न हो, तब तक वह अधूरा और असंवेदनशील रहता है। माला जी इस जापानी उदाहरण के माध्यम से यह बताना चाहती हैं कि, एक विकसित और संवेदनशील समाज वही होता है जो आम लोगों की छोटी-छोटी आवश्यकताओं, स्वास्थ्य, शांति और जीवन गुणवत्ता को ध्यान में रखकर योजनाएँ बनाता है। अतः स्पष्ट है की, जापान अपने नागरिकों को लेकर, अपने समाज के शांतिपूर्ण जीवन को लेकर उनके स्वास्थ्य को लेकर कितना सतर्क व सावधान है। माला वर्मा जी जब इस प्रकार की व्यवस्थाएं देखती है तो उन्हे अनायास ही भारत की तस्वीर सामने आ जाती है। और यहाँ की स्थिति-परिस्थिति पर उन्हे रोष भी होता है। यह प्रसंग विकास की मानव-केंद्रित सोच का आदर्श उदाहरण है, जो भारत सहित अन्य देशों के लिए एक प्रेरणादायक सिद्ध हो सकता है।

इस यांत्रिक युग में जहाँ सब कुछ बहुत तेजी से बदल रहा है। सुविधाओं के नाम पर मशीनों को एकत्रित किया जा रहा है, ऐसे में अगर कोई अपनी परम्परा अपने परिपाटी को बचायें रखे तो यह अत्यंत सुखद है। माला जी को जापान का भ्रमण करते हुए पता चला की आज के समय में भी जापान के लोग अपने व्यवहार में पत्र लेखन (चिट्ठी-पत्र) का उपयोग करते है। और ये पत्र छपाई वाले नहीं बल्कि स्वयं हाथ से लिखे हुए होते है। वे कहती है कि "जापान में अभी चिट्ठी-पत्री लिखी जाती है और जन्म-दिन, मैरिज डे के नाम पर बधाई कार्ड भेजने की परम्परा है। यहाँ लोग बाध्य होकर नहीं बल्कि बड़े शौक से ये काम करते है। वे चिट्ठी या बधाई पत्र स्वयं लिखते है।"[24] जिससे लोगों के मध्य संबंधों की प्रगाढ़ता, आत्मीयता व खुशी का एहसास बना रहता है। जापानी समाज अपनी व्यवस्था, अपनी सुविधाओं का पूरा ख्याल रखता है। उसे नई चीजों को सीखने व उसे अपने हिसाब से अपनाने की समझ है। जापानी समाज जितना समझदार है उतना ही शांत भी है। अनायास के बाहरी दिखावे, ढोंग ढकोसलों से दूर, तरक्की की राह पर चलने वाला शांति प्रिय समाज है। और कानून-कायदे के लिए सरकार भी उतनी ही सख्त है। यानि जापानी समाज लोगों की समझ, अनुशासन व सरकारी कायदों से संचालित एक अनुशासन प्रिय समाज है।

ब्राजील यात्रा के समय वहां के सामाजिक परिवेश का वर्णन करते हुए माला वर्मा कहती है- "तट किनारे कई सुन्दर घर-मकान, बागीचा, नारंगी के पेड़ जिसमें फल झूल रहे थे। हर घर के सामने बाग-बगीचा,

अपना छोटा सा जेट्टी ताकी वहाँ से नीचे उतर तट किनारे बंधी छोटी नौकाओं में कहीं आवाजाही किया जा सके। सच्ची इन घरों को देख लालच आ रहा था, कितना सुकून व शांति से इनका जीवन बीत रहा है। न शोरगुल और न ही किसी दंगा-फसाद, जाति विवाद की दुर्गंध। इस वक्त भारत में हमें जो झेलना पड़ रहा है, सोच कर घबराहट होती है। हम चाँद पर रिसर्च कर रहे हैं और मानवता हर दिन, हर पल शर्मसार हो रही है। आकाश की चिंता छोड़ जमीन की सुध लें जो ज्यादा जरूरी है।"[25] लेखिका प्रस्तुत प्रसंग के माध्यम से यह कहना चाहती हैं कि, सच्ची प्रगति वहीं है जो मानवता, शांति और सामूहिक सुख के साथ जुड़ी हो। माला जी चाहती है, भारत भी केवल तकनीकी उन्नति तक सीमित न रहे, और अपने समाज को भी ऐसा बनाए जहाँ हर व्यक्ति बिना जातिवाद, हिंसा और सामाजिक विभाजन के सुकून और गरिमा के साथ जीवन जी सके। यह प्रसंग आत्मचिंतन और बदलाव की पुकार है। उन्नत वहीं समाज आज प्रगति के मार्ग पर सबसे आगे है जिस समाज में एकता के सूत्र विद्यमान है। जो समाज अपने आंतरिक कलहों से जूझ रहा हो, उसमें सर्वसमाज की उन्नति, एकता का कारण नहीं दिखाई देता है। यहीं कारण है कि, अन्य देशों की स्थिति-परिस्थिति को देखकर, लेखिका माला वर्मा के मन में भाव जागृत होता है की, भारत की दशा में कब ऐसा परिवर्तन होगा। उनके लेखन में भारत की चिंता निरंतर जगह-जगह देखने को मिलती है।

पूरी दुनियाँ में खाने-पीने के अपने तौर तरीके है। जो बहुत कुछ वहाँ के परिवेश व प्रकृति पर निर्भर करता है। विश्व में अभी भी बहुत सी ऐसे समाज है जो आज भी हजारों साल पुरानी परंपराओं के आधार पर चल रहे है। अर्जेन्टीना के स्थानीय आदिवासी जनजाति का जिक्र माला वर्मा करती है- "उरु जाति के लोग खाने-पीने और अन्य कई कार्यों के लिए स्थानीय जीवों को पालतू बनाते हैं। जैसे वाटर बर्ड (कार्मो रेंट्स) । इन चिड़ियों के पैरों में धागे बंधे होते हैं ताकी ये मालिक के कंट्रोल में रहे। ये बर्ड पानी में डुबकी लगाते हैं और मछली पकड़ लाते हैं। एक और 'इबिस' पक्षी को ये पालते हैं जिनके अंडे को ये लोग खाते हैं और कभी-कभी स्वाद के लिए इस पक्षी को भी खाते हैं। द्वीप में चूहे भी दिख जाते हैं जिनको कंट्रोल करने के लिए फिर बिल्लियों को पाला जाता है।"[26] प्रस्तुत प्रसंग में आदिवासी जीवन के एक पहलू का वर्णन है। जो मानव और प्रकृति के बीच संतुलन की प्रेरणा देता है। इससे स्पष्ट होता है, स्थानीय संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करके एक समाज अपना जीवन-यापन आसानी से कर सकता है एवं प्राकृतिक संतुलन को भी बनाए रख सकता है। यह एक आदिवासी जीवनदर्शन है, जो आज के समय में और भी अधिक प्रासंगिक है। तभी अनिल यादव कहते है- "आदिवासी सीधा, ईमानदार, विश्वासपात्र, मेहमान नवाज तथा अपने परिवार, कबीले, समाज के प्रति निष्ठावान होता है।"[27]

कंबोडिया यात्रा के दौरान माला जी वहाँ के स्थानीय लोगों के जीवन-दर्शन, सामाजिक संरचना और धार्मिक आस्था का भावात्मक चित्र प्रस्तुत करती है- "यहाँ के लोगों का रहन-सहन बहुत सरल है और ये अपने पारिवारिक मूल्यों को समझते हैं। धार्मिकता के साथ-साथ ये अपनी अमीरी-गरीबी में भी खुश रहते हैं। संयुक्त परिवार को मान्यता प्राप्त है। कोई भी त्यौहार हो, सुख-दुख हो, जीवन-मरण की बात हो ये आपस में मिलजुल कर उसका पालन करते हैं। यानी सामाजिक एकता बरकरार है। प्रत्येक कम्बोडियाई जो बौद्ध धर्म को मानता है उसके घर में एक छोटा पैगोडा जरूर मिलेगा जहां नियमित पूजा-प्रार्थना की जाती है।"[28] इस तरह कंबोडियाई समाज अपनी परंपरा का अनुपालन करने वाला, सामाजिक समरसता से जीने वाला देश है। कंबोडिया जैसे छोटे-से देश में संस्कृति, धर्म और सामाजिक मूल्य कितनी सशक्तता से जीवित है। इस समाज पर आधुनिकता का कोई दबाव नजर नहीं आता। इसके कारण लोगों ने अपने संस्कारों और परंपराओं को जीवित रखा है। इसी तरह का समाज हमें 'फ़िनलैंड' में भी देखने को मिलता है। जो बिना किसी दबाव के अपनी जीवन को अपने ढंग से जीते है। 'अनुराधा बेनीवाल' इस संदर्भ में लिखती है- "फ़िन्न लोगों का जंगल से काफ़ी याराना होता है। ये छुट्टी वाले दिन पूरे परिवार के साथ जंगल में बेरी और मशरूम चुनने आते हैं, यह यहाँ का एक ट्रेडिशन है। जंगलों में लोग इकट्ठे होते रहते हैं। ऊँची-नीची जमीन और चट्टानें, झाड़, बूटे और पेड़-इन्हीं के बीच, इन्हीं का स्टेज बनाकर अलग-अलग तरह के आयोजन करते हैं। ग़ज़ब ही है कि फिर भी इनके जंगल बचे हुए हैं। इनसानों के इतने दखल के बाद भी कैसे ये जस के तस हैं।"[29] माला वर्मा अप्रत्यक्ष रूप से आह्वान करती है की, दुनिया को कंबोडियाई समाज से सामूहिकता, सरलता और आध्यात्मिकता की शिक्षा लेनी चाहिए। यहाँ प्रस्तुत प्रसनग से यह ज्ञात होता है की संसार भर में विभिन समुदाय के लोग खुलकर अपनी इच्छा से स्वतंत्र जीवन जीते है, एवं उन्हे प्रकृति के सानिध्य में रहकर जीवन जीना ज्यादा उचित लगता है।

खेलकुद की क्रिया जापानियों के स्वभाव में वर्षो से विद्यमान है। प्रीति सेनगुप्ता कहती है, ज्यादातर तो वह अपने पारंपरिक व आधुनिक खेल में रुचि रखते है- "जपानीझ लोको खेलकुदना शोखीन छे। जुड़ो, कराटे, केंडों (तलवार भा युद्ध), सूमो (स्थूड़देही पुरुषोनी कुस्ती) जेवी परंपरागत रमतों तो खरी ज, पण बेझबोल, टेनिस, गोल्फ, जेवी आधुनिक रमतों पण जपानमां खूब ज लोकप्रियता पामी छे। जाहेरमां के टी.वी. पर आ बधांनी हरीफाईओ जोवा लोको तोड़े मड़े छे। शांत कलाप्रिय लोकोने जातजातनी शारीरिक प्रवृत्तिओ प्रत्येनो उत्साह अने अेमनी खेलकूद प्रत्येनी तीव्र प्रीति सुखद आश्चर्यजनक छे।"[30] जापानी समाज में खेलकूद स्वस्थ जीवनशैली का हिस्सा है, जापानियों की खेलों के प्रति यह गहरी रुचि उनके

संतुलित और सक्रिय जीवनदृष्टिकोण को दर्शाता है। प्रस्तुत प्रसंग से जापानी समाज की समन्वयशील प्रवृत्ति का चित्रण होता है, जो अतीत की विरासत को संभालते हुए आधुनिकता को भी अपनाता है।

हांगकांग के 'अेबरडीन' नामक स्थान पर फैशनेबल और आधुनिक समाज के सामने एक लाचार, करूण जाती के लोग जीवन निर्वाह के लिए कितना संघर्ष कर रहे है। देख कर प्रीति सेनगुप्ता जी को बहुत दुख होता है, और वह बताती है की, इन लोगों को नाव में ही अपना जीवन निर्वाह करना पड़ता है, वही उनका घर है, वही उनका किचन, वही कपड़े सुखाते हैं, और वही मर जाते हैं। इस पूरे द्रश्य का चित्रण लेखिका ने अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। "अेबरडीन नामनी दरियाई वसाहट हृदयद्राव्य छे। पाणीमां तरतुं आ आखुं अेक गाम छे। हजारों माछीमारो अने अेमना बहोढ़ा कुटुंबो जन्क (junk) अने साम्पान (sampan) कहेवाती होड़ीओमां जीवन गुजारे छे। कहेवाय छे के अेमनों जन्म, जीवन, कामकाज, लग्न, अने छेल्ले मृत्यु आ होड़ीओ पर ज थाय छे।"[31] साधरण व्यक्ति को रोजिंदा जीवन मे कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है इस बात का साक्षी है ये 'हांगकांग का अेबरडीन', अेबरडीन कोई साधारण गाँव नहीं है। यह पानी पर तैरता हुआ एक संपूर्ण जीवनक्षेत्र है, जहाँ ज़मीन से अधिक जल से जुड़ी संस्कृति है। यहां के लोगों का जन्म, विवाह, कार्य, और मृत्यु तक सब कुछ नाव पर ही होता है। यह उनकी पारंपरिक जीवनशैली और सामाजिक परंपराओं की गहराई का चित्र प्रस्तुत करता है। यह जीवनशैली कठिन होने के बावजूद सजीव-साक्षात एवं सामाजिक रूप से समृद्ध है। लेखिका इनके जीवन को देखकर भावुक हो जाती है।

प्रीति जी, आगे चीन के शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में बताती है, "चीनमां अभ्यास अने आरोग्यनी सगवडो मफ़त होय छे। आ कारणे बधा ज भणवा जाय छे। अने रस्ता पर रोगग्रस्त अवस्थामां, निराधार हालतमां कोई व्यक्ति देखाती नथी। गरीब देश छता कोइने भीख मागवी पड़ती नथी।"[32] चीन की नीतियों की एक सराहनीय झलक यहां देखने को मिलती है, जहाँ शासन की प्राथमिकता नागरिकों की शिक्षा, स्वास्थ्य और सम्मानजनक जीवन सुनिश्चित करना है। यह मॉडल दुनिया के अन्य विकासशील देशों के लिए भी प्रेरणादायी है। चीन की नीति स्पष्ट करती है कि सच्ची प्रगति, जनकल्याण, समानता और आत्मनिर्भरता से मापी जाती है।

आज दुनिया की युवा पीढ़ी पढ़ी-लिखी है, विज्ञान का हमारे जीवन मे गहरा प्रभाव है, आज का युवा किसी भी वाद-विवाद, मान्यता के लिए तर्क के आधार पर किसी भी बात पर सहमति या उसका खंडन करता है। यही कारण है की चीन में धर्म को ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता। प्रीति जी इस संदर्भ मे कहती

है- "चीनमां बहु ज ओछा अंशना लोको धार्मिक छे। आगली पेढ़ीना, मोटी उंमरना लोको जे पहेलेथी आस्तिक हता ते हजी रह्या छे, अने बुद्ध के ख्रिस्ती धर्म पाड़े छे। पण नवा जमानाना जुवान के मध्य वयना लोको नास्तिक छे। चीन जेवा, आटली बधी वस्तीवाडा देशमां मोटा भागनी प्रजा धर्ममां, धर्मथी आवती लागणीशीलतामां धर्म थी उत्पन्न थता जुनूनमां नथी मानती, ते मोटी नवाईनी वात छे।"[33] यह आधुनिक चीन का समाज है। विशेषकर कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रभावित समाज। यहां के लोगों में शासन व्यवस्था का प्रभाव है, जहाँ धर्म को व्यक्तिगत विषय माना गया है और सार्वजनिक रूप से धार्मिक गतिविधियों को सीमित रखा गया है। चीन की आधुनिक जीवनशैली, राजनीतिक विचारधारा एवं शिक्षानीति के परिणामस्वरूप एक ऐसे समाज का निर्माण हुआ, जहाँ धर्म सामाजिक स्थिरता को बाधित नहीं करता, तथा व्यक्ति के निजी जीवन तक सीमित रहता है। चीनी लोगों की विचारधारा यह भी साबित करती है कि, वे जीवन को लेकर सुरक्षित और समृद्ध महसूस करते है। उन्हें धर्म जैसे आध्यात्मिक सहारे की आवश्यकता नहीं है।

चीन में कानून एवं नियमों का पालन खूब सख्ती के साथ किया जाता है। चोरी या विश्वासघात की घटना पर कड़ी से कड़ी सजा का प्रवधान है। बलात्कार जैसे अपराध पर सीधे फांसी की सजा दी जाती है। प्रीति जी कहती है- "चीनमा शिस्तबद्धता अने नक्की करेली रीतरसमो पर अेटलु वजन मुकाय छे के नियमनो सहेज पण भंग करनारने सजा थाय छे। चोरी करवी छेतरपिंडी करवी वगेरे मोटा गुणा गणाय छे। अने बड़ात्कार करनारने मोतनी सजा थाय छे। चीनना लोको खूब प्रमाणिक गणाय छे। होटेलोमांथी कदी कोई वस्तु चोराती नथी। दरेक पासे आरामथी जीववा माटे, पेट भरीने खावा माटे पूरतुं होय छे। तेथी गुनानुं प्रमाण आम पण ओछु ज होय छे।"[34] प्रस्तुत वर्णन से ज्ञात होता है, चीनी लोग प्रामाणिकता से अनुशासन के साथ जीवन जीते है।

प्रीति सेनगुप्ता, अमेरिकी समाज की विशेषता इस तरह प्रस्तुत करती है, "कड़ा, विज्ञान, संशोधन वगेरे सर्व क्षेत्रे अमेरिका नामांकित छे, पण सौथी वधारे महत्वनो अेनो फाड़ो व्यक्तिगत जीवनमां छे। पोतानी जीवंत संस्कृतिना बड़ पर अे व्यक्तिने आत्मविश्वासथी पगभर थवा, मनभर थवा प्रेरे छे। जे स्त्री माथुं ओढया वगर, पोड़नी बहार ना जाय, ते अहीं शर्ट, पैंट पहेरती, मोटर चलावती थई जाय छे अेनी कदाच आटली ज क्षमता होय, पण आ संस्कृतिना गर्भमां जई शकनारने मर्मस्पर्शी, तेमज व्यापक पुरस्कार मड़वानी शक्यता छे।"[35] अमेरिकी संस्कृति व्यक्तिवाद को अधिक महत्व देती है। यही कारण है की वहां स्त्रियों को स्वयं के निर्णय लेने से कोई रोक-टोक नहीं है। वहां व्यक्ति की इच्छा को सर्वोपरि माना जाता है। लेकिन इसके

विपरीत भारतीय समाज तथा अन्य कई समाजों में, सामाजिक परंपरा, नियम बहुत कठोर हैं– जैसे महिला को कैसे कपड़े पहनने हैं, कहाँ जाना है, किससे बात करनी है। अमेरिका में ये बंधन तथा ऐसी मानसिकता बहुत कम हैं। अमेरिका में नियम व्यक्ति की सुरक्षा और गरिमा के लिए हैं, न कि उस पर नियंत्रण के लिए। अमेरिका की सबसे बड़ी शक्ति उसकी संस्कृति की जीवंतता है, जो व्यक्ति को भीतर से भय मुक्त और स्वतंत्र बनाती है। यही कारण है कि एक स्त्री, जो अपने मूल समाज में दबी रहती है, वह अमेरिका में आत्मविश्वासी, निर्भीक और आत्मनिर्भर बन कर पूरी दुनिया की यात्रा कर पाती है।

प्रीति जी आगे पेरू देश की तीन पौराणिक जातियों, उनकी सभ्यता से अवगत कराती है- "पेरूमां 'इन्का' आदिजाति थई, तेम 'मेहिको' नगरनी आसपासना विस्तारमां 'अेझटेक' (Aztec) जाति, अने देशना पूर्व दिशाना राज्य 'युकातानमां' 'माया' (Maya) जाति थई। इन्कानी जेम आ बंने जातिओ पण पोतानां विचक्षण स्थापत्यों, सूर्यधर्म अने जीवनरीति माटे कीर्तिमंत छे।"[36] इन्का, ओझटेक और माया सभ्यताएँ वैश्विक सभ्यता की नींव हैं। दुनिया में जितना महत्व मिस्र के पिरामिड सभ्यता का है, मेसोपोटामिया की लिपि का है, भारत की सिंधु घाटी संस्कृति का है। उतना ही महत्व इन्का, अेझटेक, एवं माया जनजाति का है। प्रीति जी इन जातियों की सराहना उनकी सांस्कृतिक गरिमा, स्थापत्य शैली और आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण करती है। उनका उद्देश्य पाठकों को बताना है कि, इन आदिजातियों ने विश्व सभ्यता को अमूल्य योगदान दिया है, और आज भी इनके अवशेष हमें अतीत की गौरवशाली झलक प्रदान करते है।

प्रीति जी आर्कटिक की एक जनजाति 'इनुइत' के बारे में बताती है, जिनका सम्पूर्ण जीवन शिकार पर आधारित है। खानपान, वस्त्र, आवास, संस्कृति, कला, यहां तक कि आध्यात्मिक विश्वास भी शिकार से जुड़े हुए हैं। "इनुइत आर्कटिक टापुओना लोको छे। अे लोको वनस्पति वगरना दरियाई भागोमां रहेवुं पसंद करे छे। दरीयामांथी ज अे जीवननी जरूरियातो मेडवी लेता आव्या छे। ने हजीये आ जाति सील, माछली, करीबू, हरण,सफेद रींछ वगेरेना शिकारना शोखीन छे। मोटी उमरना कोई पण इनुइत मानसने पूछो तो अे कहेशे के दुनियामां सौथी वधारे मजा शिकार करवा जवामां छे।"[37] इनुइत जनजाति का जीवन और शिकार एक-दूसरे के पूरक है। बर्फ से ढकी इस पृथ्वी पर वे अपने शिकारी ज्ञान, शिकार की कला, और सामूहिक जीवन की समझ के कारण जीवित रह सके हैं। इनका जीवन, साहस एवं सहनशीलता का प्रतीक है। इन्होंने अत्यधिक ठंड और कठिन परिस्थितियों में भी अपने समाज, भाषा और संस्कृति को हजारों वर्षों तक जीवित रखा है। आधुनिकता के साथ संघर्ष करते हुए वे आज अपने सांस्कृतिक मूल्यों और

शिकार पर आधारित जीवन प्रणाली को संरक्षित करने का प्रयास कर रहे हैं, ताकि उनकी पहचान और विरासत बनी रहे।

'असग़र वजाहत' अपनी पुस्तक 'अतीत का दरवाज़ा' में लिखते हैं, "मेरे खयाल से किसी देश को देखने और समाज को समझने का सड़कों पर घूमने से अच्छा और कोई दूसरा रास्ता नहीं है। सड़क किताब होती है।"[38] इस कड़ी में समान रूप से 'ममता कालिया' जी 'कितने शहरों में कितनी बार' पुस्तक में कहती है- "शहर उसी का होता है जो घूमता है; शहर की सड़कें और सड़कों के मोड़ पहचानता है। हमें सिर्फ चलना होता, पहुँचना नहीं होता था।"[39] इस परंपरा में प्रीति जी ऐसी यात्रा साहित्यकार है, जो निरंतर सामान्य पब्लिक परिवहन का उपयोग करते हुए यात्राएं करती है। तभी वह स्थानीय लोगों के जीवन को निकटता से देख समझ पाती है।

तिब्बत में बस से यात्रा के दौरान प्रीति जी ने स्थानीय लोग जो खेतों में कार्य कर रहे थे, उनकी पोशाक का वर्णन इस प्रकार किया है- "तिबेटनी स्त्रीओ हंमेशां लाक्षणिक पोषाकमां ज होय, जाड़ा, काड़ा के बीजा घेरा रंगनां कापड़ना 'बाकु' जेवा पानी सुधी पहोंचतां कपड़ां, अंदर अेवुं ज जाडुं ब्लाउझ के शर्ट, ने क्यारेक काम्मरे अेप्रण जेवुं बांधेलुं होय। पण पुरुषों पेन्ट अने शर्ट पहेरेला पण होय। शहेरोमां तो खरा ज, पण खेतरमां काम करनारा पण। मनमां प्रश्न करेला-अे आधुनिकता हशे के सगवड़ ? सुविधा ? सस्तुं ? के पछि अे 'हान' चीनी पुरुषों हशे ? खबर नथी।"[40] प्रीति जी तिब्बत की महिलाओं के पारंपरिक पोशाक की सुंदरता से प्रभावित होती है, मोटे, काले गहरे रंग के कपड़ों से बने, 'बाकु' जैसे टखनों तक पहुँचने वाले वस्त्र; भीतर भी वैसे ही मोटे ब्लाउज या शर्ट पहनती हैं, और कभी-कभी कमर पर एप्रन जैसा कुछ बंधा होता है। लेकिन पुरुष पैंट और शर्ट पहने हुए दिखाई देते हैं। जब मैं इन स्त्रियों को देखता हूँ तो लगता है जैसे वे समय के एक स्थिर फ्रेम में बंधी हुई हैं, जहाँ परिवर्तन की कोई जल्दी नहीं। उनके पहनावे में तिब्बत की परंपरा की झलक है, एवं कठोर जलवायु के साथ संघर्ष करने की जीवन-शैली भी परिलक्षित होती है। इन कपड़ों की बनावट और मोटाई ठंडे मौसम से सुरक्षा देने के लिए होती है। वहीं पुरुषों का आधुनिक कपड़े पहनना यह बाहरी प्रभावों, शहरी संपर्क या रोज़गार के नए अवसरों का संकेत है। यह अंतर केवल वस्त्रों तक सीमित नहीं है, परंतु यह तिब्बती समाज में स्त्री-पुरुष भूमिकाओं, बाहरी प्रभावों और स्थानीय जीवन-शैली के बीच के बदलावों को भी चित्रित करता है। प्रीति सेनगुप्ता ने, प्रस्तुत प्रसंग के माध्यम से पारंपरिकता और आधुनिकता के बीच की खींचतान का बड़े ही रोचक ढंग से चित्रण प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार से आलोच्य लेखिकाओं के साहित्य में देखने को मिलता है कि दुनियाँ के किसी भी हिस्से में जाइए कुछ न कुछ खूबी व खामी हर समाज में जरूर नजर आती है। इससे कोई बचा नहीं है। और यही गुण तथा दोष एक समाज से दूसरे समाज की पहचान है। इसमें उनकी अपनी अस्मिताएं है। उनके अपने पूर्वजों की रीति एवं परंपरा की खुशबू है। उनकी उर्वरता समाज तथा उस व्यवस्था में समाया हुआ है। यह विविधताएं ही समाज की रंग-बिरंगी तस्वीर पेश करती है।

4.3 सांस्कृतिक आयाम : विश्व में संस्कृतियों का विकास बहुत पुराना है। दुनियाँ के अलग-अलग हिस्सों में विभिन्न संस्कृतियों का विकास हुआ है। संस्कृतियाँ किसी समाज का प्रतिबिंब होती है। जो अपनी प्राचीनता, अपनी विशालता और अपनी भव्यता को अपने भीतर समाहित किए रहती है। संस्कृति देश एवं समाज की पहचान होती है। प्रत्येक समाज का सांस्कृतिक बोध, उसका विचार बोध भी होता है। संस्कृतियाँ समाज की दिव्यता, भव्यता, एवं उसके उत्कर्ष का संवाहक होती है। संस्कृतियों में ही हजारों-हजार वर्ष पुराना समाज भी जिंदा रहता है। संस्कृतियाँ मानव समाज व सभ्यता की धरोहर है। दुनियाँ के कुछ हिस्से इसे लेकर अत्यधिक सतर्क है। वे आज के इस संक्रमण काल में भी अपनी संस्कृतियों का संरक्षण कर रहे है। ऐसे ही संस्कृति के विविध पहलुओं को माला वर्मा और प्रीति सेनगुप्ता ने अपने साहित्य में स्थान दिया है। उनके महत्त्व को रेखांकित किया है। जो इस प्रकार से है-

मलेशिया यात्रा के दौरान लेखिका माला वर्मा वहाँ के सांस्कृतिक आयामों को इस तरह रेखांकित करती है- "विश्व में हर जगह के कुछ अपने अलग रीतिरिवाज बन जाते हैं, कुछ अपने अलग अंधविश्वास। जैसा कि गाईड का कहना था मलयेशिया में आप अपनी तर्जनी द्वारा किसी को भी कुछ भी इंगित नहीं कर सकते। इन्सान, जानवर तो क्या सब्ज़ी या चाँद को भी नहीं। ख़रीदारी करने निकले हैं तो अपनी ज़रूरत की चीज़ की तरफ़ या तो मुड़ी ऊंगली करिए या फिर पूरा हाथ ही। जब तक आप मलयेशिया में है, कोशिश कीजिए कि किसी को न छूएं, विपरीत लिंग वाले को तो कदापि नहीं।"[41] मलेशिया एक बहुसांस्कृतिक देश है, जहाँ मलय, चीनी और भारतीय समुदायों के साथ-साथ इस्लाम धर्म का भी व्यापक प्रभाव है। इस्लामिक परंपराओं और एशियाई सभ्यताओं की सम्मिलित मान्यताएँ सामाजिक आचार-विचार में गहराई से समाई हुई हैं। तर्जनी उंगली से किसी की ओर इशारा करना वहाँ असभ्यता या अपमान की दृष्टि से देखा जाता है, क्योंकि यह आक्रामकता या आदेशात्मकता का संकेत देता है। यह विश्वास है कि सीधे इशारा करने से अनादर झलकता है, चाहे वह व्यक्ति हो या वस्तु। इसी तरह, किसी को विशेषकर विपरीत लिंग के व्यक्ति को छूना वहाँ की सामाजिक मर्यादाओं के विरुद्ध माना जाता है। यह

सीमा विशेषतः धार्मिक विश्वासों से जुड़ी है, जहाँ शरीरिक संपर्क को अत्यंत सीमित और नियंत्रित रखा गया है, खास तौर पर सार्वजनिक स्थलों पर। यह नियम इस्लामी शिष्टाचार और पूर्वी सामाजिक मूल्यबोध का भाग है, जिसमें शालीनता, संयम और सम्मान को प्रमुखता दी जाती है। लेखिका इस प्रसंग के माध्यम से बताना चाहती हैं कि, जब हम किसी भिन्न देश या संस्कृति में प्रवेश करते हैं, तो हमें वहाँ की सामाजिक भावना, आचारों और परंपराओं का सम्मान करना चाहिए। सांस्कृतिक विविधता को समझना और उसका पालन करना हमारे व्यवहार को विनम्र बनाता है तथा यह पारस्परिक सम्मान एवं सद्भाव को भी बढ़ावा देता है। चित्रित अनुभव द्वारा माला जी ने यात्रा के दौरान सांस्कृतिक विनम्रता और जागरूकता की महत्ता को रेखांकित किया है। प्रस्तुत प्रसंग से ज्ञात होता है, मलेशिया की संस्कृति में कुछ रीति-रिवाज ऐसे है जिनमें अनुसाशन, आत्मीयता का अनूठापण विध्यमान है।

थाईलैंड प्रवास मे माला वर्मा, वहां के स्थानीय लोक परंपरा का विस्तृत वर्णन इस तरह से करती है- "हम एक और बौद्ध मंदिर 'चाओ पोलाक मुआंग' गए जो पहले दो मंदिरों के अपेक्षाकृत छोटा था। इस मंदिर में हमने थाइलैंड का एक पारम्परिक 'खोन नृत्य' देखा, जिसे 'मुखौटा नृत्य' के नाम से भी जाना जाता है। अत्यन्त प्राचीन काल से खोन नृत्य चला आ रहा है जिसे नाट्य रूपों में भी प्रस्तुत किया जाता है।"[42] खोन नृत्य थाईलैंड की एक प्राचीन पारंपरिक नृत्य-नाट्य शैली है, जो अपनी भव्यता, सौंदर्य और सांस्कृतिक गहराई के कारण विश्वभर में प्रसिद्ध है। यह नृत्य मुख्यतः थाई रामायण 'रामाकिएन' पर आधारित होता है। जो भारत की रामायण कथा का एक लोकप्रचलित संस्करण है। खोन नृत्य की सबसे बड़ी विशेषता इसकी मंचीय भव्यता और प्रतीकात्मकता है, जिसमें कलाकारों द्वारा पहने जाने वाले रंगीन मुखौटे, सुंदर पोशाकें, और नाटकीय मुद्राएँ दर्शकों को एक अद्भुत सांस्कृतिक अनुभव प्रदान करती हैं। खोन नृत्य की दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि, इसमें कलाकार संवाद नहीं बोलते, बल्कि उनकी भाव-भंगिमाएँ, मुद्राएँ, और चाल-ढाल के माध्यम से कथा को प्रस्तुत किया जाता है। संवाद और संगीत पृष्ठभूमि गायकों और वादकों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं। कलाकार केवल संकेतों और मुद्राओं द्वारा अपने पात्र का अभिनय करते हैं। इससे नृत्य में भाव और संकेतों की महत्ता बढ़ जाती है, जो इसे एक विशिष्ट अभिव्यक्तिपरक शैली बनाता है। इस नृत्य में मुखौटे (Masks) का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रत्येक पात्र का मुखौटा उसके स्वभाव और भूमिका के अनुसार विशेष रंग और डिजाइन में होता है। उदाहरणत, हनुमान का मुखौटा सफेद रंग का होता है, जो उसकी वीरता और पवित्रता का प्रतीक है, जबकि रावण (थाई में 'तोसाकन') का मुखौटा हरा और कई सिरों वाला होता है, जो उसकी शक्ति और

अहंकार का संकेत देता है। इन मुखौटों को अत्यंत सजावटी और सांस्कृतिक प्रतीकों से युक्त बनाया जाता है। खोन नृत्य की वेशभूषा भी अत्यंत आकर्षक और शाही होती है। कलाकार सोने और चमकीले रंगों से सुसज्जित वस्त्र पहनते हैं, जिनमें पारंपरिक थाई अलंकरण होते हैं। ये पोशाकें न केवल पात्र की भूमिका स्पष्ट करती हैं, बल्कि नृत्य की भव्यता को भी बढ़ाती हैं। खोन नृत्य में संगीत की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है। इसमें पारंपरिक थाई वाद्ययंत्रों जैसे रणाट, पोंग लांग, और विभिन्न प्रकार के ड्रमों का उपयोग होता है। संगीत की लय और स्वर ही नर्तकों के आंदोलनों को दिशा देते हैं और वातावरण में नाटकीय प्रभाव पैदा करते हैं।

यह नृत्य कभी केवल शाही दरबारों तक सीमित था, लेकिन अब यह थाई संस्कृति का गौरवपूर्ण प्रतिनिधि बन चुका है। इसे त्योहारों, राष्ट्रीय आयोजनों और सांस्कृतिक सम्मेलनों में प्रस्तुत किया जाता है। वर्ष 2018 में खोन नृत्य को यूनेस्को द्वारा 'मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर' के रूप में मान्यता दी गई, जो इसकी वैश्विक महत्ता को दर्शाता है। इस प्रकार, खोन नृत्य न केवल एक रंगमंचीय कला है, बल्कि थाई संस्कृति, धार्मिकता, और कलात्मकता का जीवंत प्रतीक भी है। इसकी विशेषताएँ इसे एशिया की अन्य नृत्य शैलियों से अलग करती हैं और इसे एक अनूठी सांस्कृतिक धरोहर बनाती हैं।

"जाज एक लोक संगीत है जिसमें समान रूप से अफ्रीकी और यूरोपीय लोगों ने अपनी संगीत परम्परा से इसे एक नया रूप दिया। वैसे कहा जाता है यह मूल रूप से नीग्रो संगीत है। जब अमेरिका में दास प्रथा का प्रचलन जोरों पर था और अफ्रीका से बतौर दास अफ्रीकी लोगों को खेतों में हाड़तोड़ कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी-उस वक्त वे नीग्रो लोग अपने दुख को छिपाने के लिए व दुखों का अन्त हो इसके लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हुए जो स्वर लहरी अपने अंतःकरण से निकालते थे उसी का परिमार्जित रूप है ये आज का जाज।"[43] माला जी, स्पष्ट रूप से इंगित करती हैं कि, यह संगीत जन्मा था आत्मा की वेदना से, और उसमें छिपी थी प्रार्थना की पुकार। खेतों में काम करते हुए नीग्रो लोग सामूहिक रूप से ईश्वर से मुक्ति की कामना करते हुए, मिलकर गीत गाया करते थे। यह स्वर केवल मनोरंजन नहीं था, परंतु यह उनके भीतर जमी आशा, संघर्ष की चेतना और आत्मिक संबल का प्रतीक था। यह स्वर उनके कष्टों को सहने की शक्ति देता था और एक दूसरे के साथ जुड़ने का माध्यम बनता था। जैसे-जैसे समय बदला, ये धुनें, लय और भावनाएँ वाद्य यंत्रों और संगीत संरचनाओं में ढलकर शहरों की ओर पहुँचीं। इसमें यूरोपीय वाद्य यंत्र जैसे पियानो, ट्रम्पेट, और वायलिन जुड़े, जिससे इसकी संगीतात्मक विविधता बढ़ी, किंतु इसकी आत्मा वहीं रही, संघर्ष, मुक्ति और आत्म-अभिव्यक्ति। इस तरह जाज एक मिश्रित संस्कृति की देन बना, जो एक ओर

अफ्रीकी तालों और स्वरों की गर्मजोशी रखता है, वहीं दूसरी ओर यूरोपीय संगीतशास्त्र की जटिलता भी। प्रस्तुत लोक संगीत को देखते हुए एवं इसकी उत्पत्ति को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि, लोक संगीत या लोक गीत की उत्पत्ति किसी न किसी प्रकार की यातना व पीड़ा के फलस्वरूप हुई है, जिसमें लोगों के संघर्ष वेदना और उनकी पीड़ा को स्थान दिया जाता रहा है।

माला वर्मा, जापान यात्रा के दौरान एक नवनिर्मित मंदिर देखने जाती है। उस समय मंदिर देखते हुए उन्हें पता चलता है की, एक जापानी जोड़ा शादी के बंधन में बंधने वाला है, लेखिका जापान की शादी को परंपरा देखकर बहुत प्रभावित होती है। माला वर्मा के अनुसार "हमने एक जापानी जोड़े की शादी के बंधनसूत्र में बँधते देखा। जहाँ बुद्ध की मूर्ति थी उसके सामने थोड़े ऊँचे प्लेटफार्म पर एक जापानी जोड़ा बैठा था. दोनों बहुत ही क्यूट थे. लड़की सफेद गाउन में थी और सिर भी सफ़ेद झीने कपड़े से ढँका था. वहीं लड़के ने सफ़ेद व काले प्रिंट का गाउन पहना था. दोनों दो छोटे टूल पर बैठे थे. मेन दरवाज़ेसे हॉल के बीचोंबीच लम्बाई में रेड कार्पेट बिछा था जिस पर चलकर वर-वधू आगे बढ़े होंगे. हॉल के दोनों तरफ़ कुर्सियाँ लगी थीं जिनपे मर्द औरतें शान्तिपूर्ण स्थिति में बैठे थे. इस हॉल में सिर्फ़ एक व्यक्ति की आवाज़ गूँज रही थी जो वर-वधू की शादी के लिए मंत्रोच्चार कर रहा था। बताइए भला किसी की शादी हो रही है और वो भी इतने शांत माहौल में! कल्पना से परे वाली बात थी। यहाँ इतनी सादगी से शादी सम्पन्न हो रही है कि बाहर जरा भी आभास नहीं हुआ ! जबकि हमारे यहाँ हफ्ता भर कान फोडू संगीत, हो हल्ला, बेमतलब का शोर-गुल न मचे तो शादी ही नहीं होगी. मानो शादी नहीं मेला लगा हो।"[44] प्रस्तुत प्रसंग से ज्ञात होता है की, जापान के लोग बहुत ही सादगी तथा विनम्र स्वभाव के है। सबसे मुख्य बात की जापान की प्रजा अनुशासन प्रिय प्रजा है। शादी जीवन का सबसे बड़ा प्रसंग होता है, प्रत्येक व्यक्ति चाहता है की, उसकी शादी धूम धाम से हो भारत मे तो ज़्यादातर लोग ऐसा सोचते है। परंतु जब जापान के समाज को देखते है, तब उनके जीवन के बड़े से बड़े प्रसंग मे भी सादगी नजर आती है। जापानी लोगों का मानना है, आपके जीवन के बड़े प्रसंग से दूसरों को तकलीफ नहीं होनी चाहिए।

जापानियों में अपनी संस्कृति, सभ्यता को लेकर काफ़ी जोश है और वे इनसे जुड़े हुए है। सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत सम्पन्न देश जापान में 'काबुकी' एक पारम्परिक नाटक है जो लड़कियों-औरतों द्वारा कभी किया जाता था। बाद में इस प्रथा में कुछ अनैतिकता प्रवेश करने लगी तो इस नाटक से स्त्रियों को अलग कर दिया गया। अब स्त्रियों का रोल पुरुष करने लगे। सदियों से चले आ रहे इस नाटक में जापान की पुरानी ऐतिहासिक घटनाओं व कहानियों को नाट्यरूप में प्रस्तुत किया जाता है। कुछ पुराने प्रेम-प्रसंग

और आत्महत्या की कहानियाँ भी इस नाटक का हिस्सा होती है। नाटक की तरह ही गीत-संगीत समाज व संस्कृति के प्राण होते है। ये संस्कृतियों को व्यक्त करने के साधन भी होते है। जापान का नोह अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है। लेखिका इस नोह के महत्त्व को रेखांकित करके लिखती है कि- "'नोह' (Noh) चौदहवीं शताब्दी में डांस और म्यूजिक की एक सम्मिलित कला थी। जिसमें मुखौटों व भडकीले रंग-बिरंगी ड्रेस का प्रयोग होता था। इडो पीरियड (सन् 1630-1867) में यह कला अपने उत्थान पर थी जिसका प्रयोग खास-ख़ास समारोहों में किया जाता था। 'काबुकी' का चलन इडो पीरियड में ही शुरू हुआ था। जो साधारण लोगों के लिए एक मनोरंजन का साधन था। जिसमें भाग लेने वाले मुखौटे (मास्क) की जगह चेहरे पर गहरे मेकअप लगा के इस काबुकी डांस में हिस्सा लेते थे। काबुकी में स्टेज, नोह से अलग तरह का होता था जिसमें स्टेज घूम सकता था। इसके अलावा स्टेज की बनावट में और भी आधुनिक उपाय प्रयोग में लाए जाते थे। ताकि नाटक ज़्यादा जीवंत लगे।"[45]

अमेरिका के रियो में म्यूजिक फेस्टिवल मनाया जाता है। इस फेस्टिवल की यहाँ बड़ी धूम होती है। ज्यादा से ज्यादा से लोग इस त्यौहार में प्रतिभाग करते है। साउथ अमेरिका के प्रवास के दौरान वहाँ के सबसे बड़े म्यूजिक फेस्टिवल के विषय में माला जी लिखती है कि- "रियो शहर में एक म्यूजिक फेस्टिवल मनाया जाता है जिसे 'रॉक इन रियो' कहते हैं। ये रॉक इन रियो दुनिया का सबसे बड़ा म्यूजिक फेस्टिवल है।"[46] समुद्र तट पर स्थित होने के कारण यह शहर एक बड़ा बंदरगाह भी है। यहां व्यापारियों का आना-जाना पुराने समय से लगा रहता था। उनके मनोरंजन के लिए तब ये परंपरा शुरू हुई थी, जिसने वर्तमान मे व्यापक रूप धारण किया और आज ये उत्सव पूरी दुनिया बड़े धूम-धाम से मानती है। शैलानी दूर दूर से यह देखने आते है। और यह शहर देश की आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने में भी योगदान देता रहा है।

माला वर्मा ब्राजील यात्रा के दौरान लोक प्रसिद्ध 'सांबा नृत्य' का वर्णन इस तरह करती है- "ब्राजीलियन मूल के सांबा संगीत के तहत के समय के ताल पर नाचा जाने वाला तालबद्ध एक जीवंत नृत्य है। वास्तव में साम्बा कोई एक विशेष प्रकार की नृत्य शैली नहीं बल्कि नृत्यों का एक पूरा सेट है जो ब्राजील में दृश्यगत होता है। ब्राजीलियन साम्बा नृत्य शैलियों के अतिरिक्त इसकी दूसरी प्रमुख धारा बॉलरूम साम्बा है जो उल्लेखनीय रूप से अलग है।"[47] सांबा नृत्य ब्राजील के जनजीवन की पहचान का अहम हिस्सा है। साम्बा एक तालबद्ध, जीवंत और भावनाओं से भरपूर नृत्य है, जो विशेष रूप से संगीत के लय और ताल के साथ गहराई से जुड़ा होता है। यह नृत्य शैली ब्राजील के लोकजीवन, उत्सवों, विशेषत, 'कार्निवल' जैसे पर्वों में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके माध्यम से लोग अपनी खुशी का इज़हार करते है।

माला जी आगे ब्राजीलियन साम्बा और बॉलरूम साम्बा के बीच के अंतर को बताती है। यद्यपि दोनों साम्बा के नाम से जाने जाते है, परंतु उनकी प्रस्तुति, शारीरिक गति, सांगीतिक संरचना तथा मंचीय शैलियाँ एक-दूसरे से काफी भिन्न हैं। ब्राजीलियन साम्बा अधिकतर लोक सांस्कृतिक और सामाजिक संदर्भों में दिखाई देता है, जबकि बॉलरूम साम्बा एक नियंत्रित और व्यवस्थित प्रदर्शन कला के रूप में अधिक देखने को मिलता है। साम्बा एक बहुआयामी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है जो समय, स्थान और उद्देश्य के अनुसार अपने रूप और अभिव्यक्ति को बदलते रहता है। इससे स्पष्ट होता है, लेखिका का उद्देश्य केवल साम्बा नृत्य के बाह्य रूप को प्रस्तुत करना नहीं है, वह इसके भीतर छिपी विविधता, सांस्कृतिक परतें और शैलियों का विश्लेषण करके पाठक को इसकी विशेषता से परिचित कराती है।

अर्जेन्टीना के लोगों को डांस करना बहुत प्रिय है, इस संदर्भ मे लेखिका लिखती है- "रोजाना 'बॉलरूम' नामक डांस में ज्यादातर लोग हिस्सा लेते हैं। इस डांस के कई प्रकार है, जिसमें 'टैंगो' डांस की उत्पति ब्यूनस आयर्स के कसाईखाना (स्लॉटर हाउस) जिले में हुई। सबसे पहले अर्जेंटीना के इलाइट नागरिकों ने इस नृत्य को देखा और तभी से इसे गरीब लोग का नृत्य कहा जाता है। लोग अपने परिवार दोस्तों के साथ खूब आनन्द लेते हैं।"[48] विश्व में शायद ही कोई ऐसा देश होगा जहाँ नृत्य की परंपरा ना हो। ब्राजील के सांबा नृत्य के बाद लेखिका अर्जेन्टीना के लोगों का नृत्य के प्रति प्रेम भाव प्रस्तुत किया है। समान नृत्य कअ महत्व हमारे भारत में भी अत्यधिक देखने को मिलता है। हमारे यहां तो वर्ष भर राज्यों में किसी न किसी प्रकार का लोकनृत्य या त्यौहार चलता ही रहता है। वो चाहे नवरात्रि में गुजरात का गरबा हो, असम का बिहू हो, पंजाब का भांगड़ा हो या या राजस्थान का घूमर। नृत्य मनुष्य की खुशी को अभिव्यक्त करने का माध्यम है जो वर्षों से स्थापित है। इसलिए दुनिया का कोई ऐसा देश या स्थान नहीं होगा जहाँ नृत्य की परंपरा न दिखाई देती हो।

माला वर्मा अर्जेन्टीना के यात्रा के समय वहां के दो संस्कृति से जन्मे नृत्य का वर्णन विस्तार से इस तरह करती है- "टैंगो '(Tango)' एक पार्टनर डांस है यानी की पुरुष और स्त्री एक साथ जोड़े में डांस करते हैं। इस डांस की शुरुआत सन् 1880 के आसपास अर्जेन्टीना और उरूग्वे की सीमा बनाती हुई पराना नदी के बेसिन से हुई, जो इन देशों के बीच एक प्राकृतिक बाउन्ड्री है। यह डांस उस क्षेत्र के गरीब इलाकों में आरम्भ हुई जहां बंदरगाहों के गुलाम मजदूर नाच गाकर अपना मन बहलाते थे और इनका साथ दिया यूरोपियन लोगों ने जो अपने देश से निकल कर यहाँ इन्हीं लोगों के साथ काम करते थे या रहते थे। इस मिली-जुली आबादी ने कई तरह के डांस स्टेप तथा अपने-अपने क्षेत्र के संगीत को एकसार कर अपना

मन बहलाव करते थे।"[49] वर्तमान में इस तरह के नृत्य का चलन अधिक देखने को मिलता है। जहाँ दो संस्कृति के मिलन से नृत्य का नया स्वरूप विकसित होता है। आजकल इस तरह के नृत्य में कपल डांस भी अधिक लोकप्रियता हासिल कर रहा है।

'कंबोडिया वियतनाम' यात्रावृतांत्त में लेखिका वहाँ के प्रसिद्ध 'अप्सरा डांस' का जिक्र इस तरह करती है- "अप्सरा डांस (Apsara Dance) कंबोडिया का एक बहुत प्रसिद्ध नृत्य है जिसमें स्त्रियाँ सुन्दर और सुरुचिपूर्ण भाव भंगिमाएँ प्रदर्शित करती है। इनके वेषभूषा बहुत सुन्दर चटक रंगों में होते है जो अंगकोर वाट के मंदिर पर बने चित्रों से प्रेरित होती है। ये अप्सराएँ दो प्रकार की होती हैं एक लौकिक दूसरी पारलौकिक। इन अप्सराओं के डांस शैली में बौद्ध और हिन्दू पौराणिक कथाओं का समावेश होता है। माना जाता है इन नृत्यों में, भाव भंगिमाओं में बादलों व पानी की आत्माएँ होती हैं। ये डांस कभी धार्मिक परंपराओं के तहत होता था। ऐसी मान्यता थी की इसके माध्यम से राजाओं व उनकी प्रजा को दिव्य आशीर्वाद की प्राप्ति होगी। उनकी बढ़ोतरी होगी, सुख समृद्धि प्राप्त होगी।"[50] अप्सरा नृत्य कंबोडियन संस्कृति के आधारशिला माने जाते हैं। देश-विदेश से पहुंचे पर्यटकों को ये अप्सरा डांस जरूर दिखाया जाता है साथ ही इस डांस को पवित्र नजरों से देखा जाता है। नर्तक-नर्तकी डांस करते वक्त एक अलग दैवीय भाव में झूमते इठलाते हैं जिसे देख पर्यटक भी मुग्ध हो जाते हैं। सांस्कृतिक रूप से इस नृत्य का भाव भारत से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है, क्योंकि अप्सरा का शाब्दिक अर्थ होता है, स्वर्ग में रहने वाली नर्तकियाँ। यह हिंदू धर्म की काल्पनिक नर्तकियाँ है, जो सुंदर पोशाक धारण किए नृत्य करती है।

कंबोडियाँ प्रवास में ही लेखिका देखती है कि वहाँ की अभिवादन शैली भारतीयों जैसी ही है। जिसमें एक नागरिक दूसरे से हाथ जोड़कर व झुककर अभिवादन कर रहे है। और भी कई बातों में भारतीयता की झलक उसे वहाँ मिलती है। जिस पर माला जी लिखती है कि- "कम्बोडियाई लोग सामने वाले का अभिवादन, भारतीय परम्परा की ही तरह हाथ जोड़कर और झुक कर अभिवादन करते हैं। किसी कम्बोडियाई घर में प्रवेश करने के पहले जूते-चप्पल खोल कर जाए तो इसे वे सम्मान की नजर से देखते हैं। हमारे भारत में भी कई घर ऐसे हैं -खासकर बंगाल के सभी घरों में ये परंपरा देखी है जूते-चप्पल बाहर खोलकर अंदर प्रवेश करें और ये एक स्वस्थ परंपरा है बाहर की गंदगी दूसरे के घर में क्यों पहुंचाना।"[51] माला जी को कंबोडिया के स्थानीय जीवन परंपराओं में भारतीयता के दर्शन होते है। स्थानीय जीवन शैली को देखकर उन्हें प्रतीत होता है कि, हमारे यहां बंगाल में भी समान रूप से जूते-चप्पल बाहर निकाल कर

आने का रिवाज है, और अभिवादन का तरीका उन्हें समान रूप से भारत का ही लगता है। भारत एवं कंबोडिया के बीच कहीं न कहीं सांस्कृतिक रूप से यह परंपरा जुड़ी हुई है।

किमोनो केवल एक कपड़ा नहीं, बल्कि जापान की संस्कृति, इतिहास, कला और आत्मा का प्रतीक है। यह परिधान जापानियों को उनके अतीत से जोड़ता है और उनकी पारंपरिक पहचान को जीवित रखता है। यह पोशाक समुराई युग से लेकर आधुनिक जापान तक, जापानी जीवनशैली का हिस्सा रहा है। प्रीति जी इसका वर्णन इस तरह से करती है- "किमोनो जपाननां स्त्री अने पुरुषोनो परंपरागत पहेरवेश छे। अलबत्त, बंने माटेना किमोनो रंग अने आकृतिनी दृष्टिअे भिन्न होय छे। हजी रस्ता पर किमोनो पहेरेलां स्त्री-पुरुष देखाय छे खरां, पण वधु ने वधु लोको पश्चिमी पोषाक पहेरे छे। किमोनो पहेरवो बहु कठिन गाणाय छे, आ पेढ़ीनी घणी युवतीओने अे पहेरता आवड़तो पण नथी होतो, अने तेथी बहुधा हवे किमोनो प्रसंगोपात्त ज पहेराय छे। आपनी साड़ीनी जेम रोजींदो पोषाक अे नथी रह्यो।"[52] आज की युवा पीढ़ी पश्चिमी फैशन की ओर आकर्षित हो रही है, इसके परिणाम स्वरूप किमोना अब सिर्फ किसी बड़े समारोह या कार्यक्रम मे ही देखने को मिलता है। लेखिका यहां बताती है की, समान स्थिति भारतीय साड़ी की भी होते जा रही है। प्रीति सेनगुप्ता समाज मे हो रहे परिवर्तन को काफी बारीक दृष्टि एवं गंभीरता से देखती है। इससे उनके, वस्त्र-कला में रुचि का पता चलता है।

जापानी लोगों को संगीत का बहुत शौक है। जापान में जगह-जगह पर लोग संगीत सभा को सुनने के लिए, वहां आनंद मनाने के लिए जाते हैं। ये पूरा कार्यक्रम शालीनता से आयोजित किया जाता है। इसमे जो चाहे वो आगे आकार गाना गा सकता है। ये बहुत ही सुंदर परंपरा है। प्रीति जी इस संदर्भ मे कहती है– "काराओके 'Singing bar' कहेवाती आ जग्याओमां प्रचलित अने जनप्रिय फिल्म तेम ज लोकसंगीतनी केसेटोनो बहोडो जत्थों होय छे। असंख्य गीतोना शब्दों पण होय। जेने गावु होय तेना हाथमां माइक्रोफोन आपवामा आवे, क्षणोनी अंदर अे गीतनुं प्रस्चाद संगीत रेकोर्ड करेली केसेट चालू करवामां आवे, जरूर पड़ये अेकाद युवती गावामां साथ पण आपे, अने जाणीता गायकनी जेम तमे गावानो कार्यक्रम आपी शको। जाहेरमा गावानी इच्छा संतोषी शको, गीत पुरू थये हजार रहेलां बधा ताड़ीओथी वधावी पण ले ज। मैं नोंद्यू के जपान गायकोनों देश छे। बधाने ज गावानो शोख होय, अने जाने बधा ज सरस गाई शकता पण होय।"[53] इस तरह के आयोजन से व्यक्ति का मानसिक स्वास्थय अच्छा रहता है, लोगों मे सहयोग का भाव बनता है। कुल मिलाकर इन आयोजन से लोगों मे एकता, भाईचारा बढ़ता है। ओर सबसे महत्वपूर्ण की इस से आत्मीय सुख की प्राप्ति होती है।

दुनिया की कोई भी सभ्यता हो, कोई भी समाज हो, अक्सर खुशी के मोके पर वहां के स्थानीय लोग उसे व्यक्त करते है और बड़े-बड़े उत्सवों का आयोजन करते है। उसी तरह जापानी लोग पूरे वर्ष भर में अनेक उत्सव मनाते हैं। उन उत्सवों को 'निहोन्गोमा मात्सुरी' कहते हैं। प्रो. रीतारानी पालीवाल कहती है- "जापान में त्योहार और उत्सव खूब मनाए जाते हैं। यहाँ तक कहावत है कि वर्ष में लगभग ऐसा कोई दिन नहीं है जिस दिन जापान के किसी न किसी हिस्से में कोई त्योहार न मनाया जा रहा हो। हाना मत्सूरी, हिना मतत्ससूरी, साँझा मत्सूरी, हिगन, हनामी, ताना बाता, तांगोने सेक्का, बॉन, त्सुकिमी, सेत्सुबुन, सिचि गो साँ, जोया नो काने आदि जैसे त्योहारों की प्रचुरता और सामूहिकता भारतीय जीवन का स्मरण कराती है।"[54] जापान की तरह ही भारत में भी वर्ष भर किसी न किसी उत्सव-त्योहार का आयोजन होता रहता है।

'कुमामोतोनुं' यात्रा के दौरान, प्रीति सेनगुप्ता पहली बार जापानी लोकोत्सव को देखती है जिसका वर्णन इस तरह करती है- "जपानमां आखा वर्ष दरमियान अनेकविध उत्सव जेने निहोन्गोमा मात्सुरी कहे छे। आ समये लोकोने नाचवा-गावानो समूहमां भेगा थवानो, आनंद करवानो मोको मडे छे। घना उत्सवोंनां मूड़ लणणी अने माछलीओ पकड़वानी सफड़ता माटे थती प्रार्थना के विधिओमां रहेला छे। वड़ी अनेक स्थानको अने मंदिरों पण वार्षिक महोत्सवो योजे छे। मात्सुरीना अभ्यासथी जपानना कठिन इतिहासनी रूपरेखा जाणवा मड़े छे।"[55] प्रत्येक उत्सव त्योहार मनाने के पीछे कोई तर्क होता है, कोई कारण होता है जैसे जापानी लोगों के कई उत्सव मछली पकड़ने की खुशी मे मनाएं जात है। उसी तरह भारत में भी अनेक उत्सव मनाएं जाते है और उनके पीछे भी कोई एतिहासिक घटना या पारंपरिक कारण होते है।

जापान में कई घर ऐसे हैं, जहां स्नानगृह नहीं है और लोग एक साथ शहर में बड़े स्नानागार में नहाते हैं। लेखिका इस प्रसंग का वर्णन करती है– "पहेलाना जमानामां जाहेर हमामखाननी प्रथा प्रचलित हती। टर्की, मोरोक्को, वगेरे देशोंमां हजी पण अे मौजूद छे। जपानमां पण छे। त्यानां खिचोखीच भरेला शहेरोमां घणां लोको स्नान-गृह वगरनां घरमां रहेता होय तेम लागे छे। रिवाज सांजे नाहवानों छे। काम पछि अे बधा सार्वजनिक स्नानागारमां जाय छे। केटलाकमां स्त्री- पुरुषों साथे जई शके छे।"[56] पुराने समय में अधिकांश घरों मे निजी बाथरूम नहीं होते थे। घरों में नल, पाइपलाइन या शौचालय जैसी सुविधाएँ भी न के बराबर थीं। खासकर शहरों और कस्बों में आम लोगों के घर छोटे व सीमित साधनों से युक्त होते थे। गरीब और मध्यमवर्गीय लोग निजी स्नान की व्यवस्था नहीं कर सकते थे। इसलिए सामूहिक स्नानगृहों की आवश्यकता महसूस हुई, जहाँ लोग साफ-सफाई कर सकें इसलिए उन लोगों के लिए सार्वजनिक हमामखाना का निर्माण किया गया। ये हमामखाना स्वच्छता बनाए रखने की सुलभ व्यवस्था थी, तथा

लोगों के मिलने-जुलने, बातचीत करने और सामूहिक जीवन को बढ़ावा देने का स्थान था। कुछ लोगों में ये मान्यता भी थी की, नियमित स्नान करने से त्वचा संबंधी रोगों से बचा जा सकता है। लेकिन गर्म पानी के लिए लकड़ी, कोयला जैसे ईंधन की जरूरत होती थी, जो हर व्यक्ति के लिए महँगा होता था। सार्वजनिक हमामखानों में एक ही ईंधन से पानी गर्म करके कई लोग नहा सकते थे। यह तरीका आर्थिक रूप से सभी के लिए लाभकारी था। गर्म पानी और भाप से शरीर की सफाई के साथ-साथ थकान भी दूर होती थी।

सामूहिक हमामखाने पुराने समय में एक ऐसी व्यवस्था थी जो लोगों को आपस में जोड़कर रखने का कार्य कर रही थी। आज भले ही उनके स्थान पर व्यक्तिगत बाथरूम आ गए हों, लेकिन उनका ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व अब भी जीवित है, विशेषकर तुर्की, जापान और भारत के कुछ क्षेत्रों में।

कैरेबियन द्वीप समूह अपनी प्राकृतिक सुंदरता के साथ वहाँ की समृद्ध सांगीतिक विरासत के लिए भी विश्वभर में चर्चित है। इस क्षेत्र की संस्कृति में संगीत का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, जो वहाँ के सामाजिक जीवन-दर्शन को प्रकट करता है। जमैका यात्रा के दौरान प्रीति सेनगुप्ता वहां के संगीत से बहुत प्रभावित होती है। लेखिका इसका वर्णन इस तरह से करती है- "लिम्बो, कलिप्सो अने रेगे तरीके ओड़खाता संगीतना प्रकारो दुनियाभरमां खूब ज प्रिय बन्या छे। अेना ताल अने लय अेवा छे के अनायासे पण आपने डोलवा मंडी ज जईअे। अेवी मुड़भूत लोकभोग्यता अेमां रहेली छे। अेमनां नृत्योंमां नाटकीयता छे, जेम के अग्निनृत्य, ने साथे साथे उल्लासनी सरड़ता छे। दर वर्षे स्वराज दिन आवतां अठवाडिया सुधी उत्सव चाले छे। गरीब प्रजा-माटे दुख भुलवानो आ रस्तो थई पड़े छे।"[57] लिम्बो, कैलिप्सो और रेगे संगीत की शैलियाँ केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं हैं, वे इतिहास, संस्कृति और संघर्ष का जीवंत माध्यम है। इनका विकास दासप्रथा और उपनिवेशवाद की पृष्ठभूमि में हुआ है। आज जब हम इन शैलियों को सुनते हैं, तो केवल एक मधुर संगीत नहीं, वरन एक पूरी सभ्यता की आत्मा की आवाज़ हमारे कानों में गूंजती है। इन शैलियों की विशेषताओं को जानकर हम संगीत का आनंद ले सकते हैं, तथा उस सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक संदेश को भी आत्मसात कर सकते हैं, जो इन्हें दुनिया भर में विशेष बनाता है।

ऑस्ट्रेलिया एक ओर अपने औपनिवेशिक यूरोपीय अतीत को थामे हुए है, वहीं दूसरी ओर एशियाई पड़ोसियों और वैश्विक प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर खुद को बदल रहा है। प्रीति जी, ऑस्ट्रेलिया की संस्कृति को दो भागों में विभाजित करती है, पहले में एशिया के भोजन, भाषा, त्यौहार, कला और धर्म के आधार पर वही दूसरे में संगीत, समाचार, लोक कथा और साहित्य में यूरोप के आधार पर ऑस्ट्रेलिया की

तुलना करती है। "ऑस्ट्रेलियानी स्थिति अेक रीते कैक कफोड़ी छे। स्थूड रीते अे एशियानी नजिक छे, पण स्वभाव अने संस्कृतिनी रीते अे युरोपियन छे। एशियानां भोजन, भाषा, उत्सव, कडा, धर्म, धंधानो परिचय छेल्लां 30-40 वर्षथी आखी दुनियाने थतो गयो छे, तेम ऑस्ट्रेलियाने पण थाय छे। परंतु अेनी गडथूथीमां पेला ठंडा प्रदेशनां संगीत, समाचार, लोककथा अने साहित्य सिंचायेलां छे।"[58] ऑस्ट्रेलिया 'इंडो-पैसिफिक' क्षेत्र का हिस्सा है। जिससे कह सकते है की, ऑस्ट्रेलिया एशिया के भौगोलिक क्षेत्र में आता है, लेकिन उसकी ज़्यादातर जनसंख्या ब्रिटेन, आयरलैंड और अन्य यूरोपीय देशों से आए प्रवासियों की वंशज है। इसलिए भौगोलिक रूप से एशियाई होने के बावजूद उसकी सामाजिक संरचना, शिक्षा प्रणाली, न्याय, भाषा और परंपराएँ यूरोपीय मूल की हैं। लेखिका ने प्रस्तुत प्रसंग में ऑस्ट्रेलिया की संस्कृति की परतों एवं पहचान को सरल भाषा में प्रस्तुत किया है।

प्रीति जी ने तिब्बत के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण करते हुए वहां के परिवेश का सूक्ष्मता से वर्णन किया है। लेखिका ने स्वाभाविक रूप से वहां की लोक संस्कृति को गंभीरता से देखा है। प्रस्तुत प्रसंग में तिब्बतियों के स्वरूप, वेशभूषा, लोककथा एवं धार्मिक विश्वास आदि का वर्णन किया गया है। तिब्बती लोक जीवन को प्रतिबिंबित करने वाला ग्रामीण दृश्य देखें, "बधां घरोनी बहारनी तथा अंदरनी दीवालो पर छाणां थापेलां होय छे। कोटनी दीवालनी टोच पर सड़ंग अने व्यवस्थित रीते-तेम ज उभां-आडां मुकीने डिझाइन थयेली लागे ते रीते.. नाना वहेड़ा पासे स्त्रीओ कपड़ां धोती होय। छोकरां नहातां पण होय.. बसने आवती जुअे अेटले दरेकनुं मोढुं उचुं थाय...अेक स्त्री बे खेतरनी वच्चेना भागमां करायेला धानना ढगला वच्चे बेठेली ने धानने छड़वानुं काम करवामां अेकाग्र चित्ते परोवायेली हती.. आकरी ऋतुओ सहेता, कष्टवाडुं जीवन जीवता अे लोकोने पण गमे छे फूलोना रंग अने रूप अने कुदरतनी महेरबानी.. तिबेटी घरोनी दीवालों पर स्त्रीओना हाथोथी आकां-आकांवाडी छाप पडेली ज होय।"[59] दैनिक जीवन के ये छोटे-छोटे विवरण अत्यधिक दिलचस्प हैं। क्योंकि इनसे तिब्बती लोगों के रोजमर्रा के जीवन की झलक मिलती है। इस तरह के द्रश्य से लेखिका के साथ-साथ पाठक को भी तिब्बत के लोगों और भारत के ग्रामीण लोगों के बीच निकटता का संबंध महसूस होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं- सांस्कृतिक दृष्टि व सांस्कृतिक बोध दुनियाँ में भिन्नता से भरा पड़ा है, जो उनकी धरोहर व पहचान है। संस्कृति हमारे विचार व व्यवहार का अभिन्न अंग होती है। और इस संसार की खूबसूरती भी। संस्कृतियाँ हमें जीवंत करती है। संस्कृति हमे अपने अस्तित्व का दर्शन कराती है। आलोच्य लेखिकाओं ने तरह-तरह की संस्कृति को समझते हुए, उसका बेहद आदर व सम्मान के साथ

अपने यात्रावृत्तांत में चित्रण किया है। और स्वयं को उससे जोड़ने की कोशिश भी करती है। और आलोच्य लेखिका अनुभव करती है की, संस्कृतियों की विविधता मनुष्य के जीवंतता की विविधता है।

4.4 धार्मिक आयाम : धर्म आज के समय का सबसे संवेदनशील विषय बन चुका है। विश्व भर में धर्म की अलग-अलग प्रथाएं व मान्यताएं है। आज दुनिया में अनेक धर्म व पंथ है। इसकी विभिन्न पद्धतियाँ व परम्पराएं है। धर्म की इतनी सारी विविधता होने के बावजूद आज विश्वभर में धर्म के नाम पर कई लड़ाइयाँ लड़ी जा रही है। समाज को अत्यंत भयंकर संघर्ष से गुजरना पड़ रहा है।

आलोच्य लेखिकाओं के यात्रा साहित्य को पढ़ते हुए जगह-जगह धर्म व उसकी मान्यताओं के विषय में प्रमुख जानकारियाँ हासिल होती है। माला वर्मा और प्रीति सेनगुप्ता दोनों ही धर्म के इस हिंसक रूप को अस्वीकार करती है। तथा धर्म के खूबसूरत पहलु एवं भावना का आदर दोनों ही लेखिका करती है। दोनों लेखिका पाखंड, आडंबर, अंधविश्वास का विरोध खुलकर तर्क के साथ करती है। आलोच्य लेखिकाओं के यात्रा साहित्य में धार्मिक आयाम से प्राप्त मुख्य प्रसंग इस प्रकार से है।

इतिहास प्रसिद्ध यूरोप के पुनर्जागरण का सूत्रपात इटली में हुआ। इसके कई कारण थे। इटली की राजधानी रोम, प्राचीन रोमन साम्राज्य की राजधानी थी, जिसका इटलीवासियों को बेहद गर्व था। इटलीवासियों में धार्मिक अंधविश्वास बहुत कम था तथा वे नवीनता को सहर्ष स्वीकारते करते थे। यूरोप के धार्मिक नजरिए को प्रस्तुत करते हुए माला वर्मा कहती है कि- "इस पुनर्जागरण के तहत वैज्ञानिक सत्यता और यथार्थ को प्रधानता दी गई। इसी समय 'कोपरनिकस' ने बताया सूर्य स्थिर है और पृथ्वी व अन्य ग्रह उसके चारों ओर परिक्रमा करते हैं। जन-साधारण में प्राचीन ग्रीक एवं रोमन-साहित्य के प्रति अभिरुचि जगाई गई। अन्यथा लोगों का विश्वास था कि ईसाई धर्म के ज्ञान एवं दर्शन के अतिरिक्त संसार में दूसरी अन्य वस्तु नहीं।"[60] तर्क के प्रति लोगों में रुचि जगी और लोगों में प्राचीन मान्यताओं को चुनौती देने का साहस पैदा हुआ। पहले गिरजाघरों की यह मान्यता थी कि, प्रकृति में जो घटित होता है वह ईश्वर की इच्छा से होता है। परन्तु अब इस अवधारणा का खंडन होने लगा। लोग यह मानने लगे कि, प्रकृति स्वयं एक शक्तिशाली सत्ता है। बाढ़, सूखा, महामारी आदि ईश्वर की इच्छा के कारण नहीं, अपितु प्राकृतिक अनियमितताओं के कारण होते हैं, जिनपर बुद्धि, बल, कौशल से नियंत्रण पाया जा सकता है। मठों तथा सामंती संस्थाओं के प्रति लोगों में विद्रोह की भावना जागी तथा वे धर्म निरपेक्ष संस्थाओं की ओर आकृष्ट हुए। उनमें परलोक की आस्था समाप्त होने लगी और वे इहलोक के जीवन को अधिक महत्त्व देने लगे। इस तरह से समय के

बदलते चक्र में लोगों की मानसिकता भी बदली, अब लोग तर्क के आधार पर धर्म की मान्यताओं को स्वीकार करने लगे थे।

जापान मे शिंतो धर्म को मानने वाले लोग है। शिंतो शब्द का अर्थ है 'ईश्वर की पसंद' शिंतो मंदिरों मे ईश्वर की आराधना होती है, लेकिन उसमे किसी मूर्ति की पूजा नहीं होती। शिंतो धर्म मे साकार ईश्वर जैसा कुछ नहीं होता, इसके अंतर्गत निराकार ईश्वर की भक्ति की जाती है। माला वर्मा जापान यात्रा मे शिंतो धर्म का वर्णन इस प्रकार से करती हैं - "जापान में दो धर्मों का बोलबाला है जिनमें एक है 'बौद्ध धर्म; व दूसरा 'शिंतो' (Shinto) धर्म. बौद्ध धर्म का परिचायक मंदिर होता है। जबकि शिंतो धर्म का आश्रम और ये दोनों पहचान एक संग इस परिसर में मौजूद हैं। यहाँ यह दर्शाता है दोनों धमों में किसी तरह का विवाद नहीं और यह दोनों अपने-अपने तरीके से फलते-फूलते आ रहे हैं।"[61] 'शिंतो धर्म' (Shinto) जापान का एक पुराना धर्म है जिसका शाब्दिक अर्थ है 'द वे ऑफ़ द गॉड' (The Way of the God) यानी भगवान का चाल-चलन व उनकी मर्जी। बौद्ध धर्म के साथ-साथ शिंतो भी जापान का मुख्य धर्म है। इस धर्म का कोई जन्मदाता नहीं, न ही इसका कोई धर्म ग्रंथ है, न ही इसका कोई धर्म प्रचारक। इस धर्म को कभी भी प्रचार की ज़रूर नहीं पड़ी, क्योंकि यह जापानियों के खून में ही रचा-बसा है। शिंतो धर्म के लोग पेड़, पोधों, पहाड़, हवा, बारिश, नदी जैसे प्रकृति के तत्वों की पूजा करते है, समान रूप से हमारे यहां आज भी आदिवासी समाज मे इन तत्वों की पूजा देखने को मिलती हैं, जो कई वर्षों से लगातार करते आ रहे हैं।

माला वर्मा एक ओर शिंतो धर्म के सकारात्मक पक्ष को उजागर करती हैं तो दूसरी ओर उसके नकारात्मक पक्ष का भी पर्दाफाश करती है। वह इस तरह हैं– "शिंतो धर्म में भले भगवान का कोई रूप नहीं, न मूर्ति पूजा है। पर टोटका ताबीज आदि चलता है, जो एक अंधविश्वास अथवा अंधास्था ही कहलाएगा। धर्म जहाँ भी हो जिस नाम से हो थोड़ी-बहुत कुरीति ज़रूर देखी जाती है। चाहे बौद्ध धर्म ही क्यों न हो। गौतम बुद्ध ने कभी नहीं चाहा था कि उनकी पूजा हो क्योंकि वे स्वयं इसके ख़िलाफ़ थे। लेकिन लोगों ने एक न सुनी और उन्हें भी भगवान का दर्जा देकर ऊँचे तख्त पर बैठा दिया।"[62] मनुष्य का सहज स्वभाव हैं की, जब उसकी इच्छाएं भगवान के पास जाकर, धार्मिक स्थलों पर जाकर पूर्ण नहीं होती, तब वह ये सारे टोटके करने का प्रयास करता हैं जिससे उसे सफलता मिले। तब ऐसे में वह धागा, ताबीज, कर्मकांड जैसे कार्यों को अंजाम देता है। भारत मे भी ऐसी घटनाएं रोज अखबार या समाचार चेनलों पर देखने व सुनने को मिलती है। यह प्रत्येक समाज की हकीकत है, हम कितने भी आधुनिक बन जाए परंतु अंधश्रद्धा कभी

समाप्त नहीं होगी। ये हमारे समाज का कड़वा सच है। माला वर्मा की इस कविता से ज्ञात होता हैं, की आज समाज मे अंधविश्वास चरमसीमा पर हैं-

"मैं माँगता रहा पानी

वो तेल मुझ पर चढ़ाते रहे

मैं चाहता था खुली

हवा वो धुनी पास जलाते रहे

मेरे पत्ते-पत्ते का लोगों ने

कर दिया विनाश

कहाँ तक ले आया उनको

उनका ये अंधविश्वास...।"[63]

कंबोडिया व वियतनाम की यात्राओं में माला वर्मा ने देखा कि, जिस बौद्ध धर्म की उत्पत्ति ही पाखंड, अंधविश्वास, मूर्तिपूजा या कुरीतियों का विरोध करने के लिए हुआ है, वहीं बौद्ध धर्म आज खुद इन बातों में उलझ कर रह गया है। यह सच्ची धर्म भावना का पतन है। यह बुद्ध के विचारों का भी पतन है। माला जी कहती है- "जिस बौद्ध धर्म ने हिन्दू धर्म में व्याप्त अन्धास्था, अंधविश्वास, मूर्तिपूजा जैसी कुरीतियों से दूर रहने का आह्वान किया था उसे उसी धर्म के लोगों ने अपने परम पूज्य गौतम बुद्ध के असली विचारों को त्याग कर फिर से उसी पचड़े में पड़ गए जिसकी खिलाफत गौतम बुद्ध आजीवन करते रहें।"[64] आज कई बौद्ध मठों और मंदिरों में बुद्ध की मूर्तियों की पूजा की जाती है, कई तरह के चढ़ावे चढ़ाए जाते हैं, और धार्मिक अनुष्ठानों में वही कर्मकांड दिखाई देते हैं, जो कभी बौद्ध धर्म के विरुद्ध थे। यह स्थिति इस बात का संकेत है कि, धर्म का मूल उद्देश्य आत्मिक विकास और सामाजिक सुधार था। जो अब कही पीछे छूट गया है, और बाह्य आडंबरों को ही धर्म मान लिया गया है। माला जी प्रस्तुत प्रसंग के माध्यम से बताना चाहती है कि, जिस बौद्ध धर्म की स्थापना गौतम बुद्ध ने तर्क, करुणा और अंधविश्वास से मुक्त जीवन के आधार पर की थी, वही धर्म कालांतर में उन्हीं कुरीतियों और आडंबरों से ग्रस्त हो गया, जिनके विरोध में बुद्ध ने अपना संपूर्ण जीवन समर्पित किया था। यहां माला वर्मा धर्म और धार्मिकता के बीच के

अंतर को स्पष्ट करती है। उनका संकेत इस ओर है कि यदि किसी धर्म के अनुयायी उसके मूल संदेश को भुला बैठें और केवल दिखावे या परंपरा के नाम पर आचरण करें, तो वह धर्म केवल एक सामाजिक रीति बनकर रह जाता है, जिसकी आत्मा लुप्त हो जाती है। माला के विचार गहन आत्मावलोकन की आवश्यकता को उजागर करते है। जिससे धर्म की वास्तविक चेतना पुनः जाग्रत हो सके।

कंबोडिया यात्रा के दौरान अंधश्रद्धा पर विचार व्यक्त करते हुए माला वर्मा कहती है- "भारत का अंधविश्वास वियतनाम तक पहुँचा है। समझ में नहीं आता है कई मंदिर और वहाँ मौजूद देवी-देवताओं को 'जाग्रत' की श्रेणी में रखा जाता है। अगर इनके 'जाग्रत' रहते 'कोरोना' दुनिया में प्रवेश कर गया तो क्या फायदा ऐसे 'जाग्रतपना' का। इससे अच्छा तो सोये रहते।"[65] माला वर्मा धर्म के नाम पर फैले हुए पाखंड का कड़े शब्दों में प्रतिकार करती है। धर्म सर्वसुलभ व सरल होना चाहिए। धर्म कुप्रथाओं से जितना दूर रहे वह उतना ही लोकप्रिय व प्रभावी होता है। धर्म जन भावना का विषय है। लेकिन धर्मों की स्थिति को देखकर यही लगता है, जैसे यह कुछ लोगों द्वारा नियंत्रित व संचालित होता है। लेखिका इन सब से असहमत है।

प्रीति सेनगुप्ता इस संदर्भ मे कहती है- "शिंतो नामनो धर्म – के जेना कोई प्रणेता नथी के जेमा कोई उपदेश-ग्रंथ नथी ते जीवनतत्व प्रत्येना प्रेम अने आभारना भाव पर आधारित छे। सरस, सहायक, ऋतुओ, फड़द्रुप भूमि, सर्वत्र नदियों ने झरना, प्रचुर वृक्षों तेमज फूलों वगेरे बक्षवा माटे देवोनो आभार, नहीं के एमनो भय।"[66] यहां प्रीति जी शिंतो धर्म के अनुयायीओं का वर्णन करती है, यह शिंतो धर्म में मानने वाले लोग केवल प्रकृति की पर्यावरण की पूजा करते है। हमारे आदिवासी आज भी पेड़-पोधों को पूजते है, जल, जमीन की पूजा करते है, उनसें हुए जुड़े है। कुदरत का आभार हमारे यहां भारतीय संस्कृति में भी देखने को मिलता है।

फुजियामा, जापान का सबसे ऊँचा पर्वत है। यह प्राकृतिक दृष्टि के साथ-साथ सांस्कृतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्वपूर्ण स्थल है। जापान के लगभग हर नागरिक और पर्यटक के मन में 'फुजियामा' एक पवित्र में बसा है। शिन्तो धर्म में इसे देवी का निवास स्थान माना गया है, और बौद्ध धर्म में यह आत्मशुद्धि की साधना का स्थल है। इस पर्वत ने जापानी जीवन, कला, साहित्य, धर्म और पर्यटन पर गहरा प्रभाव डाला है। पर्वत के चारों ओर अनेक मंदिर और तीर्थ स्थल बने हुए हैं, जैसे 'फुजि सान होंगु सेनगेन तायशा', जो इसकी आध्यात्मिक प्रतिष्ठा को और बल देते हैं।

इसकी सुंदरता तो जापानियों के दिलों में रची-बसी है, यह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी जापानी संस्कृति की पहचान बन चुका है। पर्वत के प्रति जापानियों का श्रद्धा एवं संरक्षण का भाव यह दर्शाता है कि, किस तरह एक प्राकृतिक संरचना मानव सभ्यता की आत्मा में समा सकती है। फुजियामा सम्पूर्ण मानवता के लिए प्रकृति और संस्कृति के सुंदर संयोग का प्रतीक है। लेखिका इस संदर्भ मे कहती है- "फुजीसान कुदरतनी कमाल छे, मानवजातने मडेली सौगाद छे। जपान माटे अे अेक गौरवान्वित प्रतीक छे। अेटलू ज नहीं, पण अे जपानना सौन्दर्य, सपूर्णता अने तत्त्वशास्त्र अंगेना गंभीर खयालोना सन्निवेश समान छे। ऋतु प्रमाणे अेनु सौन्दर्य, अेनु स्वरूप जुदु-जुदु लागे छे। अेनो मसृण त्रिकोणाकार पूर्णांग गणाय छे। पृथ्वी अने स्वर्ग साथे अे सामंजस्य धरावे छे। निपोननुं अे गूढ सत्त्व छे। फुजीयामाना संरूप ढोडावोने कारणे अेनो आकार बराबर सुष्टु उंधा शंकु जेवो छे। अमे हता त्यांथी ऊंचे अेनु ज्वालामुखी, खुल्ला मुखवाडु, शिखर हतु।"[67] हमारे यहां भारत में भी देवी देवताओं के मंदिर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों पर, पर्वतों पर बने हुए हैं। जैसे पावागढ़ मंदिर, अंबाजी मंदिर, गिरनार मंदिर। समान रूप से इन मंदिरों का सौन्दर्य यहां की प्राकृतिक घटाओं मे भी देखने को मिलता है। इन मंदिरों का भारतीय जनमानस मे अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इसका मिलता जुलता रूप हमें जापान में भी देखने को मिलता है।

क्योटो जापान का एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक शहर है, जो अपने विराट और प्राचीन मंदिरों के लिए विश्वप्रसिद्ध है। यह शहर सैकड़ों वर्षों तक जापान की राजधानी रहा और धार्मिक गतिविधियों का केंद्र बना रहा। क्योटो में लगभग दो हजार से अधिक मंदिर और तीर्थ स्थल हैं, जिनमें बौद्ध मंदिर और शिन्तो धर्म के परिसर दोनों शामिल हैं। इन मंदिरों की विशेषताएँ इनके निर्माण की वास्तुकला, प्रकृति से सामंजस्य और सांस्कृतिक परंपराओं में देखी जाती हैं। लेखिका कहती है–"मंदिरोथी मढ़ेलुं आ शहेर साचे ज अवर्णनीय, असाधारण छे। अेनी अमाप कलासमृद्धिने कारणे आखु कयोटा अेक संग्रहालय समान छे।"[68]

लेखिका जापान के कॉमयोजी मंदिर के संदर्भ मे लिखती है – "कॉमयोजी, कोई प्रवासपुस्तिकामां अेनु नाम नथी, तेथी प्रवासियाओनी भिड़थी अे बची गयेलू छे। अे जाने जाहेर मार्गथी दूर छे। कॉमयोजी मंदिर बुद्ध मंदिर श्रद्धाढूओ माटे सक्रिय अने जीवंत छे। संप्रदायना लोको माटे त्या जातजातनी प्रवृतिओ चाले छे। पूजा करवा माटे भक्तोंनी अवर-जवर चालू होय छे।"[69] प्रीति जी के अंदर एक खोजी यात्री विध्यमान है, जो निरंतर दुनिया के ऐसे स्थानों को ढूँढने का प्रयास करती है जिससे दुनिया अवगत नहीं है, और यहां

भी प्रीति जी एक ऐसा मंदिर ढूंढ निकालती है, जिसके बारे मे दुनिया को नहीं पता। इनके अंदर ये खोजी गुण ही इन्हें बाकी यात्रा लेखकों से भिन्न बनाते है।

प्रीति सेनगुप्ता आगे थाइलेंड के समाज की विसंगति का चित्रण करती है- "विसंगति तो थाई जीवनमां घनी देखाय। जेमके, धर्म त्यांना रोजना जीवननो अनर्गड़, अनवरत अंश छे। दरेक कुटुंबमाथी अेक पुत्रनुं भिख्खु थवु फरजियात छे।"[70] थाईलैंड में धर्म का गहरा प्रभाव है। बौद्ध धर्म, विशेष रूप से लोगों के जीवन में अनिवार्य रूप से शामिल है। हर परिवार से एक पुत्र का भिक्षु बनना अपेक्षित है, जो बौद्ध धर्म के परंपरा से जुड़ा है। यह धार्मिक कर्तव्य समाज में व्याप्त नैतिक अनुशासन का प्रतीक है। यह परंपरा श्रद्धा का विषय होने के साथ जीवनशैली का हिस्सा भी है। हालांकि बाह्य रूप से धर्म इतना प्रबल है, लेखिका 'विसंगति' शब्द द्वारा संकेत करती हैं कि, थाइलेंड में जीवन की वास्तविकता में शायद धार्मिक नैतिकता और व्यावहारिक आचरण में अंतर है। यानी, धार्मिकता प्रदर्शन के स्तर पर है, परंतु गहराई से देखने पर ज्ञात होता है की, समाज अन्य प्रकार की जटिलताओं और विरोधाभासों से ग्रस्त है।

प्रस्तुत प्रसंग के द्वारा वर्तमान समाज में आदर्श और यथार्थ की खाई स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। यह विसंगति केवल थाईलैंड की नहीं, लेकिन हर उस समाज की है, जहाँ धर्म एक सामाजिक रीति बन चुका है, परंतु व्यावहारिक जीवन उससे कहीं अधिक जटिल और विरोधाभासी हो गया है। प्रीति सेनगुप्ता थाई समाज की इन परतों को उद्घाटित करती हैं।

प्रीति जी आगे इंडोनेशीया के हिन्दू मंदिरों का विस्तृत वर्णन करती है। बाली में हिंदू धर्म की स्थापना का इतिहास लगभग पहली शताब्दी ईसा पूर्व से माना जाता है। भारतीय व्यापारियों, ब्राह्मणों और यात्रियों ने इंडोनेशिया के कई द्वीपों में अपनी संस्कृति, धर्म और दर्शन का प्रचार किया। कालांतर में जब मजलापाहित साम्राज्य का पतन हुआ, और इस्लाम का प्रभाव जावा द्वीप में बढ़ा, तब वहाँ के हिंदू और बुद्ध धर्मावलंबियों ने बाली की ओर पलायन किया। वे अपने साथ शिव, विष्णु और अन्य देवताओं की पूजा-पद्धति लेकर आए।

बाली में भगवान शिव का विशेष महत्व इसलिए भी मिला, क्योंकि शैव धर्म उस समय इंडोनेशिया के हिंदू धर्म का प्रमुख अंग था। बाली के अनेक शाही परिवार स्वयं को शिव के वंशज मानते थे। बाली में त्रिदेव- ब्रह्मा, विष्णु और शिव को प्रमुखता से पूजा जाता है, लेकिन शिव को एक परमात्मा के रूप में सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। प्रीति सेनगुप्ता स्थानीय लोगों को देखकर कहती है- "बालीनी

ललनाओनी रोजिंदी गतिमां नृत्य छे। अने अेमना नृत्य प्रकृति अने देवताओना निष्कर्ष साथे अेकलय-अेकताल छे। रवींद्रनाथ ठाकुरे बालीना नित्यजीवन अने नृत्योमांनुं प्रचुर लालित्य जोइने कबुल कर्युं के नटराज शिवे पोतानुं नृत्य इंडोनेशियाने अर्पित कर्युं, ज्यारे पोतानी राख भारत माटे राखी।"[71] भगवान शिव को वहाँ ब्रह्मांड की परम शक्ति, आत्मा के मुक्तिदाता, प्रकृति के अधिपति और आंतरिक शांति के प्रतीक के रूप में पूजा जाता है। बाली की संस्कृति में शिव पूजा, ध्यान-योग, संतुलन एवं सह-अस्तित्व का प्रतीक माना जाता है। यह पूजा आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्थिरता का आधार भी है।

रवींद्रनाथ ठाकुर द्वारा दिया गया उद्धरण कि, 'नटराज शिव ने अपना नृत्य इंडोनेशिया को अर्पित कर दिया और राख भारत के लिए रखी'– एक गहन सांस्कृतिक व्यंग्य के रूप में देखा जा सकता है। इसमें वे यह कह रहे हैं कि जहाँ भारत में नृत्य अब केवल स्मृति या प्रतीक बन कर रह गया है, वहीं बाली जैसे स्थानों में वह जीवन का जीवंत हिस्सा है। यहां भारतीय संस्कृति की अप्रत्यक्ष रूप से आलोचना जैसा प्रतीत होता है। ठाकुर की टिप्पणी यह भी इंगित करती है कि, भारत जिसकी संस्कृति में शिव का नटराज रूप केन्द्रीय है, आज उस जीवंत नृत्य-परंपरा से कहीं दूर हो चुका है। इसकी तुलना में इंडोनेशिया, विशेष रूप से बाली, ने उस परंपरा को जैसा का तैसा आत्मसात करके रखा है।

लेखिका ने बाली की सांस्कृतिक जीवंतता एवं स्त्रियों की भूमिका तथा नृत्य की आध्यात्मिकता को अत्यंत सराहनीय ढंग से प्रस्तुत किया है। साथ ही लेखिका का यह विचार पाठक को सोचने पर मजबूर करता है कि, क्या भारतीय परंपराएं अब केवल पुस्तकों और प्रतीकों में रह गई हैं।

धर्म पालन अनुशासन व सर्व मंगल व सर्व कल्याण का विषय है। लेकिन जब यह अपने रास्ते से भटकता है, तब सबसे पहले इसके द्वारा लोगों में डर फैलाया जाता है। इसके द्वारा अशुभ व अमंगल की भावना का प्रचार-प्रसार किया जाता है। यह धार्मिक नियंत्रण जहाँ लोगों को कमजोर करता है वही उनका शोषण भी करता है। यही धार्मिक पाखंड है। दोनों लेखिकाओं की नजर में जहाँ भी इस प्रकार की बातें दिखी है वे उसका प्रतिवाद करती है। और धर्म के सही स्वरूप को धारण करने की बात करती है।

4.5 प्राकृतिक आयाम : प्राकृतिक आयाम यात्रा साहित्य का प्राणवायु है। प्रकृति इसमें जैसे अनायास ही अपना स्थान ग्रहण करती चलती है। प्रकृति की विविधता, उसके रूप-रंग सब कुछ यात्रा साहित्य में समाया रहता है। इसके साथ ही इसमें नदियों की लहरे, पक्षियों कलरव, झरने का संगीत, समुद्र का शोर, जंगल का सन्नाटा, फूलों की खुश्बू, सब कुछ जैसे जीवंत हो उठता है। आलोच्य लेखिकाओं के यात्रा

साहित्य में प्रकृति के अनेक रूपों का चित्र दिखाई पड़ता हैं। दोनों ही प्रकृति के साथ अपना गहरा तादात्म्य स्थापित करती है। साथ ही प्रकृति को कैसे बचाया जा सकता है, कैसे उसे संरक्षित किया जा सकता है, कैसे बिना नुकसान पहुचाएं हम उससे जुड़े रह सकते है, इत्यादि बातों पर गहन चिंतन उनके लेखन में देखने को मिलता है। आलोच्य लेखिका इन सब अनुभवों के पश्चात भारतीयों को विशेष तौर पर अपील करती है कि, कैसे दुनियाँ के अन्य हिस्सों की तरह हम भी अपनी प्रकृति को, पर्यावरण को बचा सकते है। यहाँ माला वर्मा और प्रीति सेनगुप्ता के प्रकृति से संबधित प्रकरण को प्रस्तुत किया जा रहा है-

स्विट्ज़रलैंड यात्रा के समय माला वर्मा का मन वहां रम जाता है। कारण बदलता मौसम था जो निरंतर बदल रहा था। लेखिका इस संदर्भ का वर्णन इस तरह करती है "स्विट्जरलैंड को दुनिया का स्वर्ग माना जाता है। यहाँ जैसी स्वच्छ और स्वास्थ्यवर्द्धक जलवायु अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलेगी। रोमन सम्राट 'जूलियस सीजर' जैसे महान् योद्धा स्वास्थ्य लाभ हेतु यहाँ आता था। बड़ी-बड़ी अनगिनत झीलों एवं ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों से घिरा है यह देश। यहाँ का मौसम तेजी से बदलता है। अभी कोहरा और बारिश है, तो कुछ ही देर में इतनी तेज धूप पड़ने लगेगी कि सहना कंठिन हो जाएगा।"[72] स्विट्ज़रलैंड देश की प्राकृतिक बनावट, विशाल झीलें, ऊँचे पहाड़, हरियाली और बदलता मौसम इसे और भी आकर्षक बनाते हैं। लेखिका मौसम के अचानक बदलते स्वभाव को रेखांकित करते हुए, यह दिखाना चाहती हैं कि, यह देश प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर जीवंत और चमत्कारी है। कोहरे और बारिश के बाद अचानक तेज धूप का पड़ना मानो प्रकृति के रंगमंच पर दृश्य परिवर्तन जैसा प्रतीत होता है। इस वर्णन के माध्यम से लेखिका इंगित करती हैं कि, स्विट्ज़रलैंड का सौंदर्य गतिशील है। यहां प्रत्येक क्षण नया स्वरूप, नया अनुभव है। यह विशेषता इस देश को पर्यटकों एवं प्रकृति प्रेमियों के लिए एक आदर्श स्थल बनाती है।

प्रकृति ने दुनियाँ के हर हिस्से को कुछ न कुछ विशेष जरूर दिया है। कुछ लोग उसे बचा सके है, उसका संरक्षण कर पाए है तो कुछ लोग उसका विनाश कर रहे है। जापान प्रकृति के तत्वों को बचाकर रखना जानता है। जापान के लोग प्रकृति का संरक्षण करना मुख्य कर्तव्य समझते है। माला वर्मा वहाँ के फूलों को, नदियों को तथा उनकी सुंदरता को देख कर मोहित होती है। वह कहती है कि- "खिड़की से बाहर का दृश्य देख हम दंग थे। हर तरह सुंदरता के आलम। जहाँ-तहाँ चेरी ब्लासम के फूल दिखने लगे थे। इसी फूल के चलते हमने ये सीजन चुना था। यहाँ के खेत-खलिहान भी सजे-सँवरे थे, यहाँ तक कि छोटी-मोटी नदियाँ भी अनुशासन में बहती नजर आई।"[73] माला वर्मा अधिकांश यात्रा में नियोजन करके तय करती है की, कब, कहां, ओर किस देश में जाना है। वर्तमान समय इंटरनेट का समय है, आज टेक्नोलॉजी के द्वारा

हम घर बैठे अपने मोबाईल फोन से देश-दुनिया के मौसम की जानकारी, फोरकास्ट का विवरण पता कर सकते है। इंटरनेट की सुविधा होने के कारण दुनिया भर के भूगोल को, वहा के मौसम को जानना, समझना अब अनुकूल है। इसके परिणाम स्वरूप आज यात्राएं करना सरल हो गया है। आधुनिक यात्री पहले से योजना बनाकर फिर यात्राओं पर निकल रहे है। इससे प्रकृति को देखने का सही समय, कुदरत के नजारे का आनंद कब लेना है, यह अब यात्री पहले से निर्धारित कर सकता है। माला वर्मा इस दृष्टि से एक दक्ष यात्री है।

माला वर्मा प्रकृति को संरक्षण के दृष्टिकोण से देखती है। जीतने भी प्राकृतिक तत्व इस पृथ्वी पर है, वह सब इसका शृंगार है। यह प्राकृतिक तत्व पृथ्वी की शोभा बढ़ाते है। इसके फलस्वरूप हमें शुद्ध हवा, जल और अनगिनत संसाधन मुफ़्त में प्राप्त होते है। इनको बचाना मनुष्य की जिम्मेदारी है। जापान भ्रमण के दौरान माला जी कहती है कि- "प्रकृति के बीच विचरण कीजिए। प्रकति ने हमें, इस जीवन में बहुत सारी खूबसूरत चीजें प्रदान की हैं। मूक अबोले किन्तु बेहद सजीव, रंग-बिरंग नानाविध फूल-पौधों पर मोहित होइए और सिर नवाते जाइए। प्रकृति के इस उपकार को कभी नहीं भूलना चाहिए। प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं की हम हिफाजत करें, उन्हें नष्ट न करें, मनुष्य का मनुष्य से प्रेमभाव बना रहे इससे बढ़कर ईश्वर की पूजा और क्या हो सकती है?"[74]

प्रस्तुत वर्णन के आधार पर माला वर्मा प्रकृति को प्रभावशाली शक्ति के रूप में प्रस्तुत करती है, जो मनुष्य को जीवन जीने की ऊर्जा प्रदान करती है। रंग-बिरंगे फूल-पौधे, हरियाली, स्वच्छ वायु, नदियाँ, पहाड़ ये सब नेत्र आनंद के साथ-साथ मन को भी शांति प्रदान करते हैं। लेखिका के अनुसार, हमें इन प्राकृतिक उपहारों को देखकर केवल आनंदित नहीं होना चाहिए, परंतु उनके प्रति कृतज्ञता की भावना भी रखनी चाहिए। आगे माला जी कहती है, मनुष्य और प्रकृति के बीच का संबंध केवल उपभोग का नहीं, बल्कि सहयोग और सम्मान का होना चाहिए। प्रकृति ने जो कुछ हमें दिया है, उसकी रक्षा करना, उसे सहेजना, यह हर व्यक्ति का नैतिक उत्तरदायित्व है। लेखिका को मनुष्य सभ्यता के अस्तित्व की चिंता यहां नजर आती है, यदि हम पर्यावरण को नष्ट करते जाएंगे, पेड़ों को काटते चले जाएंगे, नदियों को प्रदूषित करते रहेंगे तो आने वाले समय में हमारा अस्तित्व भी मिट सकता है। माला जी यह भी कहती हैं कि, जब तक मनुष्य का मनुष्य से प्रेमभाव बना रहेगा, तब तक समाज में भी समरसता बनी रहेगी, और यही सच्ची मानवता एवं धर्म का सार है। अतः लेखिका स्पष्ट रूप से अपने विचार रखती है कि, प्रकृति की रक्षा,

उसके प्रति आभार और परस्पर मानवीय प्रेम ही ईश्वर की सच्ची पूजा है, और इन्हीं मूल्यों के संरक्षण से जीवन सुंदर और सार्थक बनाया जा सकता है।

जापान को सूर्योदय का देश कहा जाता है, माला वर्मा इस संदर्भ में सूर्य का वर्णन बड़े रोचक ढंग से करती है। "सोचिए तो एक अकेला बंदा करोड़ों-करोड़ों वर्षों से अहर्निश हमें रोशनी दिए जा रहा था, दिए जा रहा है और आगे भी बिना किसी लालच के देता रहेगा. कहीं कोई व्यवधान नहीं, कहीं कोई कोताही नहीं. इस तरह का ईमानदार बंदा पूरे ब्रह्मांड में आपको देखने को मिलेगा क्या? एक दिन अपनी शक्ल न दिखाए तो पृथ्वी पर सब ठप्प हो जाए।"[75] आगे लेखिका भिन्न-भिन्न देशों मे देखे सूरज के स्वरूप का चित्रण आकर्षक रूप से करती है- "इस एक सूरज का मैंने कई-कई रूप, कई-कई स्थलों पर देखा है। चाहे वो नॉर्वे का मिड नाईट सन हो (ग्रीष्म ऋतु), आइसलैंड का नॉर्दन लाइट्स हो (शीत ऋतु) या फिर जापान का ये हड़बड़िया सूरज। नॉर्वे में मिड नाइट के दौरान रात बारह बजे तक सूरज आसमान में मौजूद और पुनः सुबह साढ़े तीन बजे हाजिर। तो वहीं आइसलैंड में नॉर्दन लाइट्स के दौरान (शीत ऋतु) शाम चार बजे सूरज गायब और दूसरे दिन सुबह नौ बजे अलसाते हुए उगता यानी फुल मस्ती। इन सब में अपना भारत वाला सूरज ही क़ायदे-कानून में बंधा दिखता है. एकदम से नकलची नहीं। गुड ब्वॉय।"[76]

इसी तरह माला वर्मा 'साउथ अमेरिका' प्रवास के दौरान प्रकृति का जो नजारा अनुभव करती है उसका वर्णन यहां प्रस्तुत है- "रास्ता घाट अव्यवस्थित था लेकिन गुलमोहर और अमलताश के फूलों ने मन मोह लिया। इतनी चिलचिलाती गर्मी में भी ये कितने हरे-भरे कितने खिले हुये थे। इन वृक्षों को देख जिन पर पत्तियाँ कम फूल ज्यादा थे, सोचने लगी परिस्थिति चाहे जो हो हमें हार नहीं माननी चाहिए। आखिर ये भी उतनी ही गर्मी झेल रहे हैं फिर भी कितना मुस्कुरा रहे हैं! प्रकृति का खेल भी निराला है इस प्रचंड गर्मी में इस तरह के कई फूल हैं तो इसी विपरीत स्थिति में खिलना पसंद करते हैं।"[77] इस प्रसंग के माध्यम से लेखिका इंगित करती है कि, प्रकृति की हर अवस्था में मनुष्य के लिए कोई न कोई संदेश छिपा होता है, जैसे- अमलताश और गुलमोहर की खिली मुस्कान यह सिखाती है कि, विपरीत समय में भी मुस्कराना संभव है, बशर्ते हमारे भीतर जीने की इच्छा प्रबल हो। जीवन में मुश्किलें आना स्वाभाविक है, लेकिन उनसे टूट जाना हमारी कमजोरी होगी। हमें प्रकृति से यह सीख लेनी चाहिए कि, कठिनाइयाँ जीवन का हिस्सा हैं, और उन्हीं में हमारा संपूर्ण सौंदर्य और आत्मबल प्रकट होता है। अतः यह प्रसंग केवल प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन नहीं है, अपितु जीवन के प्रति मानसिक मजबूती और विपरीत स्थितियों में भी हिम्मत बनाए रखने की प्रेरणा देने वाला भावनात्मक क्षण एवं दार्शनिक संदेश है।

हवाई जहाज आकाश मे था, तब माला वर्मा खिड़की से जमीन की ओर देखती है और कहती है- "खिड़की से बाहर भी क्या-क्या नजारे थे। अपनी धरती कितनी सुन्दर कितनी विविधता लिए हुये है। अहर्निश बिना किसी लालच, बिना किसी उम्मीद के दिये जा रही है। प्रकृति का संग साथ न हो तो हमारा अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा।"[78] इस प्रसंग के ज्ञात होता है की, माला जी को प्रकृति से अत्यधिक स्नेह है, तभी तो हवाई जहाज के सफर में होने के बावजूद भी वह इतनी ऊंचाई से धरती की भव्यता को देखने की कोशिश करती है। खिड़की से बाहर झाँककर प्रकृति के सुंदर और विविध दृश्यों को देखकर उसकी विराटता और उदारता से प्रभावित होती हैं। लेखिका यह स्पष्ट करती हैं कि, मनुष्य भले ही विज्ञान, तकनीक और आधुनिकता में कितना भी आगे बढ़ जाए, लेकिन यदि वह प्रकृति से दूर हो गया, तो उसकी उन्नति अधूरी रह जाएगी। धरती जो कुछ हमें देती है, वह निस्वार्थ है, बिना किसी लालच या अपेक्षा के, और यही उसकी महानता है। हमें भी उसी भाव से उसके प्रति आभार प्रकट करना चाहिए, और उसका संरक्षण करना चाहिए।

सभ्यता व संस्कृतियों के विकास में नदियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। नदियों द्वारा सभ्यता व संस्कृतियाँ विकसित हुई है। आज भी दुनियां की ज़्यादातर सभ्यता नदियों के किनारे निवास करती है। माला जी 'साउथ अमेरिका' में भ्रमण कर रही है और वहाँ की नदी का चित्रण करते हुए कहती है कि- "मदमस्त हवा में विचरते। कई तरह के गाछ-बिरछ के बीच से होते हुए ट्रेन आगे बढ़ रही थी। थोड़ा आगे बढ़ने पर हमें इग्वासु नदी दिखने लगी। मटमैले रंग की नदी जो आगे चलकर खूबसूरत जलप्रपात बनाती है। नदी का शांत निश्छल स्वरूप मन मोह रही थी। उसे क्या पता इसे देखने इत्ते सारे लोग यहाँ आते है। गज़ब का नज़ारा था। यहाँ नदी अपने पूरी चौड़ाई में नहीं थी बल्कि टुकड़ों में बंटी पेड़-पौधों के बीच से बहती हुई आ रही थी और बायीं ओर विस्तार पाती हुई अपना चौड़ा रूप दिखा रही थी।"[79] यहां पर महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि, नदी का बहाव किसी एकरूप, सीधी रेखा में नहीं है। वह टुकड़ों में, पेड़-पौधों के बीच से रास्ता बनाते हुए आगे बढ़ती है, यह जीवन की उस सच्चाई का प्रतीक है कि रास्ते हमेशा सीधे नहीं होते, लेकिन यदि प्रवाह बना रहे तो अंततः मंज़िल मिलती ही है। यहां प्रकृति के माध्यम से जीवन दर्शन का चित्रण दिखाई देता है। नदियां आर्थिक रूप से भी हमारी सहायता करती है। कृषि व पशुपालन में तो इनका सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। माला वर्मा ने 'कंबोडिया वियतनाम' भ्रमण के दौरान वहाँ की मेकांग नदी का वर्णन किया है, 'मेकांग' नदी का कृषि क्षेत्र मे अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है लेखिका के अनुसार- "मार्ग में पड़ने वाले अपने खेतों को सींचती हुई मेकांग नदी वियतनाम में आकर एक बड़ा डेल्टा बनाती है

और दक्षिण वियतनाम के खेतों को इतना पानी देती है कि इस इलाके को 'राइस बॉल' (Rice Ball) भी कहा जाता है। इस नदी के डेल्टा वाले इलाके में चावल की पैदावार इतनी ज्यादा होती है कि यह देश खुद तो इस मामले में आत्मनिर्भर है ही, इसके अलावा अन्य देशों को भी चावल निर्यात करता है। इस इलाके में चावल की कई किस्में है और इनकी क्वालिटी भी बहुत अच्छी है।"[80] मानव सभ्यता के अनादि काल से लेकर अब तक के इतिहास में नदियों की भूमिका आर्थिक दृष्टि से अत्यंत कारगल सिद्ध हुई है, दुनियां के किसी भी भूभाग की नदी हो वह अपने आसपास वाले हिस्से को कृषि भूमि बनाकर स्थानीय लोगों के जीवन को समृद्ध करती है। भारत में जैसे नर्मदा नदी, गंगा नदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, यमुना ऐसी असंख्य नदियां है, ये भारत की जीवन रेखा है। जिनके किनारे मानव सभ्यता का विकास हुआ है। वैसे ही दुनिया में नील नदी, अमेजन नदी, और ये मेकांग नदी है, जिन्होंने मानव संस्कृति को विकसित कर समृद्ध किया है।

माला वर्मा नदियों के दर्शन से गदगद है। उनकी सुंदरता पर मोहित है। उनकी अभव्यक्ति करते हुए वे कहती है कि– "सच्ची ये नदियां कितना कितना रूप धर हमें मोहती हैं। पूरी धरती पर हजारों नदियां हैं फिर भी सबकी सुन्दरता अलग-अलग। कोई किसी से कम नहीं। सब की सब श्रेष्ठ संयोगवश मैंने दुनिया की दो सबसे लंबी नदियों का भी सुख उठाया है। इजिप्ट घूमते वक्त नील नदी में चार दिन का क्रूज, साउथ अमेरिका में स्थित अमेज़न नदी में क्रूज तथा दुनिया की सबसे ऊंचाई पर स्थित लेक टिटिकाका में नौका विहार। ऐसी और भी कई प्रसिद्ध नदियां हैं जिनका दर्शन किया है। भारत की समस्त नदियों को देखा-सुना व महसूस किया है। इस एक जीवन में अब और क्या चाहिए।"[81] नदी की यात्रा यहाँ प्रतीक बनकर उभरती है, वह प्रतीक है जीवन की यात्रा का, जो सतत प्रवाहमान है, जिसमें स्थिरता नहीं, निरंतर गति है। यह गति केवल भौतिक गमन नहीं है, अपितु मानसिक रूपांतरण की दिशा में भी है। जब कोई व्यक्ति नदी के तट पर बैठता है, उसकी कलकल ध्वनि को सुनता है या उसकी धारा में उतरता है, तो वह स्वयं को उस व्यापक ब्रह्मांडीय चक्र का हिस्सा महसूस करता है जो प्रकृति और जीवन को जोड़ता है। यही अनुभव उसे विनम्रता और आत्मबोध की ओर ले जाता है। प्रस्तुत प्रसंग इंगित करता है कि, आधुनिक जीवन की भागदौड़, भौतिकता और उपभोक्तावाद से जकड़े मानव को मानसिक और आध्यात्मिक संतुलन पाने के लिए प्रकृति की ओर लौटना आवश्यक है। जब हम नदियों जैसे प्राकृतिक धरोहरों से जुड़ते हैं, तो हमारे भीतर मौन संवाद शुरू होता है, ये हमें जीवन के अर्थ की ओर ले जाता है।

जापान यात्रा के दौरान 'प्रीति सेनगुप्ता' को भूकंप का अनुभव होता है और उस घटना का चित्रण लेखिका इस प्रकार से करती है- "अेक राते सुखनिद्रामांथी कोइअे हचमचावी आखा नगरने जगाड़ी दीधु। राते त्रनेक वाग्या हशे। झबकीने जागी उठतां ज मने ख्याल आव्यो के त्यारे सखत धरती कंप थई रह्यो हतो। आखु मकान, मारी पथारी, नीचेनी जमीन ध्रुजी रह्या हता। मने थयु के हमणा छापरु तुटी पड़से। अे दुश्चितानी पड़े पण अेक हसवा जेवो विचार आवी गयेलो। थयु के पासपोर्ट शोधीने साथे राखी लउ, जेथी काटमाड़मांथी मड़ी आवु त्यारे कोइने खबर तो पड़े के कोनो देह छे। थोड़ी क्षणोमां भूकंप थंभ्यो।"[82] प्रस्तुत प्रसंग अत्यंत रोचक व भयावह भी है। इसमें मानव मन का डर, खुद के अस्तित्व की चिंता, एवं पहचान की ललक जैसे बहुस्तरीय भाव समाहित हैं। यह घटना एक प्राकृतिक आपदा भर का वर्णन नहीं करती है, बल्कि यह भी दर्शाती है कि, विपत्ति के क्षणों में मनुष्य किस प्रकार से सोचता है, और प्रतिक्रिया करता है।

अमेज़न नदी दुनिया की सबसे बड़ी और जैव विविधता से भरपूर मीठे पानी की नदी है। यहाँ अनगिनत मछलियों की प्रजातियाँ पाई जाती है। दक्षिण अमेरिका यात्रा के दौरान, प्रीति जी अमेजन नदी का सौन्दर्य एवं उसमे पाई जाने वाली प्रजातियों का वर्णन यहां चित्रित करती है- "दुनियानी कोई नदीमां होय तेथी वधारे जातनी मछलीओ अेमेझोनमां छे। मीठा पाणीनी निर्दोष डॉल्फिनथी मांडीने पाँच मिनिटमा हाड़कां सुधी पहोंची जईने जान लई लेती, देखावे नानकड़ी, स्वभावे क्रूर भयानक पिरान्हा।"[83] प्रीति सेनगुप्ता ने अमेज़न नदी की बहुआयामी प्रकृति का चित्रण, अत्यंत प्रभावशाली ढंग से किया है। अमेज़न नदी की मछलियाँ जैव विविधता का प्रतीक हैं। वे वहाँ की पारिस्थितिकी, स्थानीय जीवनशैली, और वैश्विक पारिस्थितिक तंत्र के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। लेखिका ने यहां दो जीव, 'डॉल्फिन' और 'पिरान्हा' को दो विपरीत प्रतीकों के रूप में दिखाया है। डॉल्फिन निर्दोष, सौम्य और आकर्षक है, जबकि पिरान्हा छोटी होकर भी क्रूर, हिंसक और जानलेवा है। यह प्रसंग दर्शाता है की एक ही नदी में सौंदर्य और भय, शांति और हिंसा, करुणा और विनाश सब समाहित है। इसी यात्रा के दौरान लेखिका 'याहूवा' 'Yagua' आदिवासी जाति का वर्णन करती है। जो अमेजन के जंगलों में ही रहती है- "अमे याहूवा आदि-जातिना इंडियन लोकोनी वसाहत जोवा जतां हतां। छेक किनारे होड़ी जई ना शकी। अमारे बूट-चंपल काढ़ी लपसणा, चिकना, काडा कादवमां चालीने अेमना सुधी जवुं पड़यु। दरेक स्त्री अने पुरुषे शणना रेसाओमाथी बनावेलां 'आभूषण' हाथ अने पग पर बांध्यां हता। अने अेनां ज स्कर्ट अने गडामां झाड़ू जेवा 'हार' पहेर्या हता। दरेकनुं शरीर पातडुं ने पेट फुलेलुं हतु। खोराकमांनी सत्वहीनताने लीधे आम हशे।

स्त्रीओ लागती हती नानी, पण चहेरा पर बहु ज अकाड़ उंमर देखाती हती। पुरुषोनां मोढां पर वधारे नूर हतुं। थोड़ां बाड़को आसपास फरतां हतां। अे लोको स्पेनिश नहीं पण कोई बीजी ज बोली बोलतां हतां। अेक पुरुष अेमनो मुखी हतो। अेने माथा पर पण शणमांथी बनावेलु 'शिरस्त्राण' पहेर्युं हतु। दरेकना मोढा पर लाल मोटा मरचांमांथी बनावेलो लेप लगाड़ेलो हतो। स्वागत करवा माटे अेमने अमारा गाल, नाक अने हड़पची पर पण आ लेप लगाडयो।"[84] प्रीति सएगुप्ता, सबसे पहले बताती है कि, याहूवा जनजाति की बस्ती तक पहुँचना कितना कठिन था। पारंपरिक नाव (होड़ी) वहां तक नहीं जा सकी, और इसलिए बूट-चप्पल निकालकर कीचड़ से होकर चलना पड़ा। जहां रास्ता बड़ा ही 'फिसलन' भरा था। स्त्री-पुरुषों ने शण (घास) से बने आभूषण हाथ और पैरों में बाँध रखे थे। उनकी पोशाकें मुख्यत: स्कर्ट प्राकृतिक संसाधनों से बनी हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि, यह समाज सरल एवं सादगी को जीवन का मुख्य हिस्सा मानता है। प्रीति जी, उनके शरीर का वर्णन इस तरह करती है- उनके शरीर दुबले और पेट फूले हुए थे, जो कुपोषण का संकेत था। उनका आहार पर्याप्त पोषण वाला नहीं था। स्त्रियाँ देखने में छोटी लगती थीं, लेकिन उनके चेहरों पर उम्र की कठोर छाप थी, जिससे उनकी जीवन की कठिनाइयों का अंदाजा लगाया जा सकता है। वे लोग स्पेनिश नहीं बोलते थे, और स्थानीय आदिवासी भाषा का उपयोग करते थे। सबसे खास बात, लाल मिर्च के लेप से मेहमानों का स्वागत किया जाना एक विशेष परंपरा है। यह लेप उनके सौंदर्य एवं रीति-रिवाज का हिस्सा है। इस पूरे विवरण में प्रीति जी ने आदिवासी समाज की परंपरा, जीवनशैली, संघर्ष और सुंदरता को बिना किसी पूर्वाग्रह के यथार्थ रूप से जैसा देखा वैसा प्रस्तुत किया है।

वर्तमान में औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण अंधा-धुंध वनों की कटाई की जा रही है। जिसका परिणाम आज पृथ्वी के तापमान में बढ़ोतरी के रूप में देखा जा सकता है। पृथ्वी का तापमान सामान्य तापमान से कई अधिक बढ़ गया है। पैंतीस वर्ष पूर्व ही प्रीति सेनगुप्ता को इस बात का अंदाजा था। प्रस्तुत प्रसंग से समझेंगे- "आटलुं बधुं कापवुं ने बाड़वुं केवुं भयजनक छे। जो अे बधुं आ ज रीते चालतुं रहे तो चालीस वर्षनी अंदर बधा ज वर्षा-वनोना संपूर्ण संहार थई जशे। ने अेनी साथे ज, जीवननुं अजायब, गोपन, गूढ शुं नुं शुं विलुप्त थशे ?"[85] लेखिका की मानसिकता में पर्यावरणीय चिंता नजर आती है। वह पाठकों से अपेक्षा करती हैं कि, लोग विकास और विस्तार के नाम पर प्रकृति के विनाश को नज़रअंदाज़ न करें। उसे रोकने में सक्रिय भूमिका निभाएँ।

"समाज के वर्तमान परिदृश्य को देखकर ऐसा लगता है जैसे भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण का सिद्धांत उन लोगों को लाभान्वित कर रहा है, जो पहले से ही सुविधा संपन्न हैं। शेष समाज संघर्ष, कुंठा और रोष के रूप में इसकी कीमत चुका रहा है। इससे एक राष्ट्र-विशेष का पारिवारिक, जातीय एवं सामाजिक बोध भी प्रभावित हो रहा है।"[86]

प्रीति जी इस प्रसंग के माध्यम से चिंता व्यक्त करती हैं कि, यदि हमने अभी भी प्राकृतिक संसाधनों, विशेषकर वर्षा-वनों की रक्षा नहीं की, तो हम पृथ्वी पर जीवन के अनेक गूढ़, और अमूल्य रूपों को भी हमेशा के लिए खो बैठेंगे। यह केवल पर्यावरण की नहीं, मानवता के अस्तित्व के लिए भी चुनौती है।

आश्चर्य की इस दुनिया में लेखिका रात के नौ बजे आसमान में सूरज को देखकर अचरज में पड़ जाती है। इसलिए यह निर्धारित करना कठिन हो जाता है कि, दूर क्षितिज पर बादलों ने बर्फ का रूप ले लिया है, या बर्फ बादलों के साथ घुल-मिल गई है। ऐसा लगता है जैसे, पहाड़ आसमान में तैर रहे हों। इस मायावी दुनिया के जादू के प्रभाव को महसूस करते हुए लेखिका अवाक रह जाती है। "जड़, स्थड़ ने हवा आ ज मुड़तत्वोनी अहीं उपस्थिति। त्रणे अंदरोअंदर वहेंचातां, वलोवातां रहेतां हतां। मन आ जादुई असर नीचे बंदीवत् हतुं, बुद्धि रही जती हती प्रश्नार्थ चिन्हने अंते"[87] अंटार्कटिका यात्रा के समय का अनुभव प्रीति जी ने यहां प्रस्तुत किया है। पृथ्वी, जल, और वायु की आपस मे मौजूदगी से ऐसा अनुभव हुआ जो दिल को गुदगुदा गया। यह अनुभव बहुत ही खास, और मन को मोह लेने वाला था।

यहां प्रीति सेनगुप्ता मेकॉन्ग नदी की विशेषता बताती है। "मेकॉन्ग नदीने दक्षिण विअेतनामनी जीवादोरी कही शकाय। आ नदी आम तो 2600 माइल लांबी छे, तिबेटमां थइने छेक नीचे समुन्द्र सुधी पहोंचे छे। अेनी आसपासनो प्रदेश खूब फड़द्रूप छे, खास करीने दक्षिण विअेतनाममांना अेना मुखत्रिकोणनो विस्तृत प्रदेश"[88]

प्रीति जी ने यहां मेकॉन्ग नदी का विवरण दिया है। मेकॉन्ग नदी दक्षिण-पूर्व एशिया की एक प्रमुख नदी है। यह नदी तिब्बत से निकलकर दक्षिण वियतनाम में समुद्र से मिलती है। इस संदर्भ में 'चंद्रभूषण' बताते है, "बो या पो तिब्बती भाषा में नदी के लिए आने वाला शब्द है। बो यानी नदी और त्सो यानी झील।"[89] यह नदी जिस क्षेत्र से होकर गुजरती है, वहाँ की भूमि अत्यंत उपजाऊ है। विशेष रूप से दक्षिण वियतनाम का डेल्टा (मुखत्रिकोण) क्षेत्र कृषि की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है, जहाँ चावल की भरपूर खेती होती है। इसलिए इस नदी को वहां की जीवनदायी कहा जाता है। इस कड़ी में भारत में भी अनेक नदियाँ हैं जो

अलग-अलग क्षेत्रों की जीवनरेखा है। गंगा नदी, भारत की सबसे पवित्र और विशाल नदी मानी जाती है। उत्तर भारत के गंगा मैदानी क्षेत्र में यह कृषि, जल आपूर्ति, एवं धार्मिक जीवन, और सभ्यता का आधार रही है। जैसे मेकॉन्ग नदी वियतनाम के डेल्टा को उपजाऊ बनाती है, वैसे ही गंगा अपने मैदानों को सिंचित कर लाखों किसानों का जीवन चलाती है। गोदावरी और कृष्णा नदियाँ, ये दक्षिण भारत की प्रमुख नदियाँ हैं, जो महाराष्ट्र, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश आदि राज्यों की कृषि और जल व्यवस्था की रीढ़ हैं। गोदावरी डेल्टा क्षेत्र में भी उपजाऊ कृषि भूमि पाई जाती है, जो मेकॉन्ग के डेल्टा की तरह ही फसल उत्पादन में योगदान देती है। ब्रह्मपुत्र नदी, यह हिमालय से निकलकर भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में प्रवेश करती है और बांग्लादेश में गंगा से मिलती है। इसकी भी उपस्थिति असम जैसे राज्यों में कृषि, जल परिवहन और पारिस्थितिकी के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

मेकॉन्ग नदी और भारतीय नदियों की भूमिका में गहरी समानता है। नदियाँ अपने मार्ग में आने वाले क्षेत्र की, वहाँ के जनजीवन के विकास की जीवनरेखा होती हैं। चाहे वह गंगा हो या मेकॉन्ग, इन नदियों ने संपूर्ण सभ्यता को जीवंत रखने का कार्य किया हैं। अनुराधा बेनीवाल यूरोप की नदियों का जिक्र कुछ इस तरह से करती है- "यूरोप के बड़े शहरों की जो बात उन्हें बेहद ख़ास बनाती है, वह है उनके बीचो-बीच एक नदी का होना। एक साफ़ नदी का बहना। और उन नदियों के किनारे बनी होती हैं एक से बढ़कर एक लाजवाब इमारतें। एक बार कहीं नदी मिल जाए, तो उसे पकड़कर पूरा शहर आर-पार कर लो और बस, मजे-मजे में शहर का एक बड़ा-सा सुंदर टुकड़ा देख लिया आपने।"[90] इससे ज्ञात होता है की, संसार की सारी सभ्यता नदियों के किनारे ही विकसित हुई है।

प्रीति सेनगुप्ता, प्रकृति के उदाहरण से मानवता को संबोधित करती है। उनका विचार है की, जीवन में संघर्ष के मार्ग पर चलकर पुनः लक्ष्य प्राप्ति में लग जाना चाहिए। लेखिका कहती है, प्रकृति से मानव को सीख लेकर आगे बढ़ने की प्रेरणा लेनी चाहिए। "क्यारेक, कदाच, आपणां हृदय हताश थई जाय छे ज्यारे आगड़ जई ना शकाय तेवी रीते बरफना टेकराओ ने खड़को जेम तेम पडेला जोइअे छीअे। अेवी पण क्षणों आवे छे ज्यारे थाय छे के पांखो वगरनो कोई जीव आथी आगड़ जई शके तेम ज नथी। अेकादा उड़ता पंखी तरफ उत्कंठाथी जोतां रहीअे छीअे, ने थाय छे, अेनी पासेथी पांखो उछीनी लई शकाय तो क्यांना क्यां पहोंची जवाय। पण पछी, बधी मुश्केलीओनी पार जईने कशो रस्तो निकड़ी आवे छे, अने पाछी आशा बंधाय छे।"[91] यहां प्रकृति के माध्यम से प्रीति सेनगुप्ता ने स्पष्ट किया हैं कि, जीवन में कुछ क्षण ऐसे आते हैं जब मनुष्य पूर्ण रूप से हताश हो जाता है। परिस्थितियाँ इतनी कठिन होती हैं कि आगे बढ़ने का

कोई मार्ग नहीं दिखता। जैसे कोई व्यक्ति बर्फ से ढंके ऊँचे टीलों और चट्टानों के बीच फँस गया हो। उस कठिन घड़ी में जब व्यक्ति किसी उड़ते हुए पक्षी को देखता है, तो उसे लगता है कि काश, वह भी उड़ने में सक्षम होता। यह दृश्य उसे प्रेरणा देता है, और उसकी इच्छा शक्ति को बढ़ाता है। लेखिका यह स्पष्ट करती हैं कि, समय के साथ हर कठिनाई का कोई न कोई निवारण जरूर निकलता है। जीवन अपने आप में गतिशील है, और कठिनाइयों के बाद समाधान का रास्ता खुलता ही है। जब समाधान मिलता है, तो पुनः आशा का संचार होता है। प्रस्तुत प्रसंग के माध्यम से प्रीति सेनगुप्ता यह संदेश देना चाहती हैं कि, जीवन में चाहे जितनी भी कठिनाइयाँ आएं, निराशा स्थायी नहीं होती, हमें धैर्य और विश्वास बनाए रखना चाहिए, क्योंकि हर अंधकार के बाद एक रास्ता खुलता है, और आशा फिर से जन्म लेती है।

प्रकृति ने पृथ्वी के प्रत्येक कोने को अपनी विशिष्टता और सौंदर्य से अलंकृत किया है, जब बात 'उत्तर ध्रुव' की होती है, तो यह क्षेत्र न केवल भौगोलिक रूप से विशिष्ट है, अपितु प्राकृतिक सौंदर्य, रहस्य एवं वैश्विक पर्यावरण संतुलन का केंद्र भी है। उत्तर ध्रुव का क्षेत्र, बर्फ से ढका समुद्र, अनंत आकाश, ध्रुवीय प्रकाश की नृत्य करती लहरें, दुर्लभ जीव-जंतु, और मौन में गूंजता जीवन, एक ऐसा दृश्य प्रस्तुत करता है, जो मानव कल्पना से परे लगता है। इस संदर्भ में प्रीति जी कहती है- "पृथ्वी क्यां पूरी थाय छे, ने आकाश क्यां शरू थाय छे ते बधुं अेक माया ज छे, छलना ज छे। हूं आशा राखुं छुं के आ शुद्ध, स्वेत, जादुई स्थान हवे पछीना थोड़ा दिवस मारी सर्जनशक्तिमां प्राण पुरशे। विश्व पाछड़ क्यांक रही गयुं छे, ने हूं हड़वाश अनुभवुं छुं। विश्वना उतरतम प्रदेश तरफ हूं उडी रही छु, मारा हृदयनी इप्सानी प्राप्ति प्रति गति करी रही छुं।"[92] प्रस्तुत प्रसंग मन की गहराई को छूता है। लेखिका ने यहां आर्कटिक को एक जादुई, रहस्यमय और दिव्य सौंदर्य से ओतप्रोत स्थान के रूप में चित्रित किया है। लेखिका कहती हैं कि, पृथ्वी और आकाश की सीमाएँ यहाँ मिट जाती हैं, जिसके कारण यह क्षेत्र एक मायावी क्षेत्र लगने लगता है। 'शुद्ध, स्वेत, जादुई स्थान' जैसे शब्द आर्कटिक की सफेदी, निर्मलता और दिव्यता के दर्शन कराते हैं। यह सौंदर्य दृश्य आत्मा को छूने वाला प्रतीत होता है। लेखिका को लगता है कि, यह स्थान उनकी सृजनशक्ति में नयी ऊर्जा फूंकेगा। उन्हें ऐसा महसूस होता है कि, बाकी संसार पीछे छूट गया है और वे किसी अलौकिक अनुभूति की ओर अग्रसर हैं। आर्कटिक के इस सौंदर्य में शांति, एकांत, और रहस्य का संगम है, जो किसी भी व्यक्ति को आत्म-विस्मृति और आत्म-खोज की ओर ले जा सकता है।

इस प्रकार माला वर्मा एवं प्रीति सेनगुप्ता के यात्रावृत्तांतो में विविध आयाम के स्तर पर जब हम अध्ययन करते है तो पाते है कि, आलोच्य लेखिकाओं के यात्राओं में अत्यधिक विविधता है। दोनों के अन्वेषी,

जिज्ञासु और समाज प्रेमी, प्रकृति प्रेमी, संस्कृति प्रेमी एवं साहसी होने के पर्याप्त तथ्य जगह-जगह देखने को मिलते है। माला वर्मा और प्रीति सेनगुप्ता ने देश-दुनियाँ के कई हिस्सों को धर्म, संस्कृति, समाज, परंपरा, लोक, प्रकृति, रीति व नीति आदि दृष्टि से देखा, समझा और महसूस किया है। और इनका सजीव चित्रण इनके इन यात्रावृत्तांतों में हमें देखने को मिलता है। इसके साथ ही देश-दुनियाँ की अनेक नयी परम्पराएं हमारे सामने आती है। इन सब आयामों के आधार पर हम यह कह सकते है कि, माला वर्मा और प्रीति सेनगुप्ता के यात्रावृत्तांत देश दुनियाँ के समाज, संस्कृति, धर्म, राजनीति, प्रकृति आदि को समझने के महत्त्वपूर्ण स्त्रोत है। ज्ञान का खजाना होने के साथ-साथ इनकी यात्राएं एक प्रकार से यात्रियों के लिए शुभकामनाओं के संदेश पत्र भी है।

संदर्भ सूची:

1. माला वर्मा, यूरोप यात्रा संस्मरण, पृष्ठ सं. 16
2. वही, पृष्ठ सं. 170
3. माला वर्मा, पिरामिडों के देश में, पृष्ठ सं.31
4. माला वर्मा, जापान यात्रा-वृत्तांत, पृष्ठ सं.13
5. माला वर्मा, साउथ अमेरिका यात्रा संस्मरण, पृष्ठ सं.73
6. वही, पृष्ठ सं.163
7. माला वर्मा, साउथ अफ्रीका यात्रा संस्मरण, पृष्ठ सं.29
8. माला वर्मा, आर्कटिक ध्रुवीय भालू का देश, पृष्ठ सं.76
9. प्रीति सेनगुप्ता, पूर्वा, पृष्ठ सं.21
10. वही, पृष्ठ सं.30
11. प्रो. नंद किशोर पाण्डेय, प्रो. दीपेन्द्रसिंह जाडेजा, गद्य मंजूषा, पृष्ठ सं.90
12. वही, पृष्ठ सं.90
13. पंकज बिष्ट, ख़रामा-ख़रामा, पृष्ठ सं.61
14. प्रीति सेनगुप्ता, पूर्वा, पृष्ठ सं.59
15. वही, पृष्ठ सं.58-59
16. वही, पृष्ठ सं.114
17. वही, पृष्ठ सं.114
18. वही, पृष्ठ सं.115
19. वही, पृष्ठ सं.200
20. प्रीति सेनगुप्ता, मन तो चंपानुं फूल, पृष्ठ सं.106
21. प्रीति सेनगुप्ता, सुतर स्नेहनां, पृष्ठ सं.254
22. वही, पृष्ठ सं.254-255
23. माला वर्मा, जापान यात्रा-वृत्तांत, पृष्ठ सं.30
24. वही, पृष्ठ सं.35
25. माला वर्मा, साउथ अमेरिका यात्रा संस्मरण, पृष्ठ सं.37

26. वही, पृष्ठ सं.169
27. अनिल यादव, वह भी कोई देस है महाराज, पृष्ठ सं.81
28. माला वर्मा, कंबोडिया वियतनाम, पृष्ठ सं.78
29. अनुराधा बेनीवाल, लोग जो मुझमें रह गए, पृष्ठ सं.74
30. प्रीति सेनगुप्ता, पूर्वा, पृष्ठ सं.125
31. वही, पृष्ठ सं.176
32. वही, पृष्ठ सं.203
33. वही, पृष्ठ सं.207-208
34. वही, पृष्ठ सं.213-214
35. प्रीति सेनगुप्ता, दिक् दिंगत, पृष्ठ सं.15-16
36. प्रीति सेनगुप्ता, सूरज संगे दक्षिण पंथे, पृष्ठ सं.236
37. प्रीति सेनगुप्ता, उत्तरोत्तर, पृष्ठ सं.17
38. असग़र वजाहत, अतीत का दरवाज़ा, पृष्ठ सं.13
39. ममता कालिया, कितने शहरों में कितनी बार, पृष्ठ सं. 109
40. प्रीति सेनगुप्ता, देवो सदा समीपे, पृष्ठ सं.82
41. माला वर्मा, आईये मलेशिया सिंगापुर थाईलैंड चलें, पृष्ठ सं.47
42. वही, पृष्ठ सं.137
43. माला वर्मा, अमेरिका मे कुछ दिन, पृष्ठ सं.76
44. माला वर्मा, जापान यात्रा-वृत्तांत, पृष्ठ सं.37
45. वही, पृष्ठ सं.185
46. माला वर्मा, साउथ अमेरिका यात्रा संस्मरण, पृष्ठ सं. 30
47. वही, पृष्ठ सं.42
48. वही, पृष्ठ सं.85-86
49. वही, पृष्ठ सं.99
50. माला वर्मा, कंबोडिया वियतनाम, पृष्ठ सं.29
51. वही, पृष्ठ सं.79
52. प्रीति सेनगुप्ता, पूर्वा, पृष्ठ सं.91

53. वही, पृष्ठ सं.102-103
54. प्रो. रीतारानी पालीवाल, जापान के विविध रंग, पृष्ठ सं.13
55. प्रीति सेनगुप्ता, पूर्वा, पृष्ठ सं.111
56. वही, पृष्ठ सं.143
57. प्रीति सेनगुप्ता, दिक् दिंगत, पृष्ठ सं.204
58. प्रीति सेनगुप्ता, अंतिम क्षितिजों, पृष्ठ सं.09
59. डॉ. बिपिन चौधरी, प्रवासिनी प्रीति सेनगुप्ता, पृष्ठ सं.191
60. माला वर्मा, यूरोप यात्रा संस्मरण, पृष्ठ सं.79
61. माला वर्मा, जापान यात्रा-वृत्तांत, पृष्ठ सं.45
62. वही, पृष्ठ सं.155
63. वही, पृष्ठ सं.156
64. माला वर्मा, कंबोडिया वियतनाम, पृष्ठ सं.20
65. वही, पृष्ठ सं.174
66. प्रीति सेनगुप्ता, संबंधनी ऋतुओ, पृष्ठ सं.11
67. प्रीति सेनगुप्ता, पूर्वा, पृष्ठ सं.120-121
68. वही, पृष्ठ सं.141
69. वही, पृष्ठ सं.145
70. प्रीति सेनगुप्ता, दिक् दिंगत, पृष्ठ सं.48
71. वही, पृष्ठ सं.188
72. माला वर्मा, यूरोप यात्रा संस्मरण, पृष्ठ सं.34
73. माला वर्मा, जापान यात्रा-वृत्तांत, पृष्ठ सं.29
74. वही, पृष्ठ सं.83
75. वही, पृष्ठ सं.222
76. वही, पृष्ठ सं.223
77. माला वर्मा, साउथ अमेरिका यात्रा संस्मरण, पृष्ठ सं. 17
78. वही, पृष्ठ सं.17
79. वही, पृष्ठ सं.59

80. माला वर्मा, कंबोडिया वियतनाम, पृष्ठ सं.184
81. वही, पृष्ठ सं.193
82. प्रीति सेनगुप्ता, पूर्वा, पृष्ठ सं.130
83. प्रीति सेनगुप्ता, सूरज संगे दक्षिण पंथे, पृष्ठ सं.31
84. वही, पृष्ठ सं.34
85. वही, पृष्ठ सं.94
86. डॉ. एलाङबम विजयलक्ष्मी, भाषा, पृष्ठ सं.37
87. प्रीति सेनगुप्ता, धवल आलोक धवल अंधार, पृष्ठ सं.29
88. प्रीति सेनगुप्ता, मन तो चंपानुं फूल, पृष्ठ सं.98
89. चंद्रभूषण, तुम्हारा नाम क्या है तिब्बत, पृष्ठ सं.21
90. अनुराधा बेनीवाल, आजादी मेरा ब्रांड, पृष्ठ सं.32
91. प्रीति सेनगुप्ता, उत्तरोत्तर, पृष्ठ सं.13
92. वही, पृष्ठ सं.15